"तिरुमल क्षेत्र दर्शिनी ग्रन्थमाला"

तिरुपति के परिसर क्षेत्र

हिन्दी अनुवाद

डॉ. आर. राज्यलक्ष्मी

तेलुगु मूल

गोपी कृष्ण

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति
2015

TIRUPATI KE PARISAR KSHETRA

Hindi Translation
Dr. R. Rajyalakshmi

Telugu Original
Gopi Krishna

T.T.D. Religious Publications Series No. 1164

First Edition - 2015

Copies: 3000

Price:

Published by
Dr. D. SAMBASIVA RAO, I.A.S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

D.T.P:
Office of the Editor-in-Chief
T.T.D, Tirupati.

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press
Tirupati

प्रस्तावना

''वेंकटाद्रि समम् स्थानम् ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन
वेंकटेश समो देवो न भूतो न भविष्यति ।।''

इसका अर्थ है - वेंकटाद्रि के समान का क्षेत्र इस ब्रह्मांड में नहीं है । वेंकटेश्वर जी की बराबरी कर सकनेवाले भगवान भी आज तक कहीं नहीं हुए हैं और आगे भी नहीं होंगे ।

कलियुग वैकुंठ के रूप में शोभायमान श्रीवेंकटाद्रि पर अखिलांड कोटि ब्रह्माण्ड के अधिनायक श्रीवेंकटेश्वर जी अवतार लेते हुए अनुनित्य अपने भक्तों को दर्शन देकर उन्हें मुक्ति प्रदान कर रहे हैं । श्रीवेंकटेश्वर जी के दिव्य मंगल स्वरूप को क्षणभर के लिए ही क्यों न हो दर्शन करते हुए जन्मराहित्य के लिए हजारों की संख्या में प्रतिदिन भक्त इस क्षेत्र की यात्रा करते हैं ।

पुकारने पर प्रकट होनेवाले कलियुग के भगवान, भक्तों की इच्छाओं को पूरा करनेवाले श्रीवेंकटेश्वर जी ने जिस दिव्य क्षेत्र में अपने अस्तित्व को दर्शाया वहाँ के उस दिव्य मंगल स्वरूप, स्वामी - पुष्करिणी, पवित्र - तीर्थ, भगवान के लिए अतिभव्यता के साथ होनेवाले नित्य पूजा, अर्चना आदि के बारे में भक्तों को सूचना देने के लिए तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने 'तिरुमल क्षेत्र दर्शिनी' नाम से एक ग्रंथमाला का आरंभ किया । इसके लिए अनेक पंडितों और विद्वानों से सहयोग प्राप्त कर रहे हैं ।

इस श्रृंखला के अंतर्गत वर्तमान ग्रंथ में हम श्री गोपीकृष्ण जी द्वारा लिखा गया 'तिरुपति के परिसर क्षेत्र' नाम के इस ग्रंथ को आप भक्तों

तक पहुँचा रहे हैं। हमें विश्वास है कि भक्तगण इस ग्रंथ की मदद से तिरुपति के अडोस - पडोस में बसे क्षेत्रों के बारे में विस्तृत जानकारी पाते हुए धन्य बनेंगे।

सदा श्रीहरि की सेवा में

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्,
तिरुपति

अनुक्रमणिका

* * *

1. श्री श्रीनिवासमंगापुरम् - श्री कल्याण वेंकटेश्वर स्वामी

तिरुपति की पश्चिमी दिशा में, वहाँ से 10 किलोमीटर की दूरी पर मदनपल्लि को जानेवाले प्रमुख रास्ते से सटकर बसा हुआ यह छोटा - सा गाँव किसी प्राचीन समय में बहुत प्रसिद्ध हुआ करता था। इसे सिद्ध कुट्टी, श्रीनिवासपुरम्, श्रीनिवासपुर ग्रामं तथा अलिमेलमंगापुरम् जैसे अनेक नामों से जाना जाता था। 19 वीं शताब्दी के वैकुण्ठ वलनाडु (चन्द्रगिरि) तालुक के तिरुवेंकट कोट्टम् (तिरुमल - तिरुपति) जिला की तरिगोंड वेंगमाम्ब द्वारा लिखित शिला लेखों के अनुसार श्यामल जंगल से सटे हुए नागपट्ल इस प्रदेश का केन्द्र बिन्दु था। स्वर्णमुखी नदी की उपनदी कल्याणी (विकल्य) के तट पर यह गाँव बसा है।

कहते हैं, यह कल्याण वेंकटश्वर जी का अत्यन्त प्रिय जगह है। तिरुमल का मन्दिर और श्रीनिवासमंगापुरम् मन्दिर, दोनों एक ही रेखा पर बसे हैं। बस इतनी ही भिन्नता है कि एक मंदिर पर्वत के ऊपर बसा है तो दूसरा उसी पर्वत के नीचे है। इसके समीप के स्वर्णमुखी नदी तट पर श्री आनन्दवल्ली समेत श्री अगस्त्येश्वर स्वामी मन्दिर बसा हुआ है। किसी समय यहीं पर अगस्त्यमुनि का आश्रम था। यह प्रदेश चिन्तूर की ओर जानेवाले मुख्य रास्ते के किनारे पर स्थित है। तिरुपति से 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित इस क्षेत्र में नव वर के रूप में श्रीनिवास जी अपनी नव वधू पद्मावती के साथ तिरुमल की ओर जाते हुए पहली बार यहाँ आये थे। हल्दी में सने नए वस्त्रों को धारण किये हुए नव वर - वधू को अगस्त्यमुनि ने अपने आशीर्वाद दिये और कहा कि, ''उन वस्त्रों में तिरुमल पर्वत पर जाना मना है - यदि जाना ही हो

तो छः महीनों के बाद जा सकते हैं ।'' आत्मीयता से उन्होंने आगे कहा कि ''जब वे इतनी दूर आ ही गये तो पीछे लौटकर जाना अच्छा नहीं है'', और वे दोनों वहीं पर रूक गए । श्रीनिवास जी के पास 'हाँ' करने के सिवा दूसरा चारा नहीं था। लेकिन उन्हें नव दम्पति के रूप में आश्रम में गृहस्थी करना अच्छा नहीं लग रहा था । इसी कारण से वे हर दिन पूजा - पाठ के बाद वहाँ समीप में स्थित श्रीनिवासमंगापुरम् लौटते थे ।

श्रीनिवासमंगापुरम् अपनी प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है । यहाँ से 'श्रीवारिमेट्लु' मार्ग से होते हुए तिरुमल पहुँचना निकट पडता है । शेषाचल पर्वतों की छटा का आस्वाद लेते हुए श्रीनिवास जी ने वहाँ पर छः महीनों का समय व्यतीत किया और उसके बाद उन्होंने अगस्त्य महामुनि की अनुमति प्राप्त करके अपनी पत्नी पद्मावती के साथ इसी 'श्रीवारिमेट्लु' मार्ग से तिरुमल पहुँचे । इस तरह इन दोनों के चरण स्पर्श पाकर इस मार्ग ने अत्यन्त पवित्रता को पा लिया है । इसके बाद चन्द्रगिरि राज्य पर शासन चलाने वाले अनेक राजाओं ने चन्द्रगिरि किले से श्रीवेंकटेश्वर मन्दिर तक पहुँचने के लिए इसी सुगम मार्ग को अपनाते हुए भगवान के दर्शन प्राप्त करके धन्य हो गये ।

श्रीनिवासमंगापुरम् में तथा तोंडवाड के अगस्त्य महामुनि के आश्रम में श्रीनिवास जी ने अपने प्रवासीय जीवन को व्यतीत किया था । इस कारण से इसकी स्मृति में वहाँ पर एक भव्य मन्दिर निर्मित करने का विचार राजवंश के किसी राजा के मन में आया । उन्होंने तुरन्त विकल्य (कल्याणी) नदी के तट पर श्रीनिवासमंगापुरम् में इस कल्याण वेंकटेश्वरस्वामी जी के मन्दिर का निर्माण करवाया । यादव राजाओं में

से या प्रथम विजयनगरम् राजाओं में किसी ने उस समय के 'कोट्टाल' नाम की जगह (वर्तमान में चन्द्रगिरि येगुव रेड्डिवारि पल्लि के शिथिल मन्दिर विमान की जगह पर) पर एक यज्ञशाला से युक्त मन्दिर का निर्माण करवाया । यहाँ पर यज्ञ करने के साथ - साथ उन्होंने 'सिद्ध कुट्टि' नाम के श्रीनिवासपुरम् स्वामी जी के मन्दिर को बनवाया । चूँकि, मन्दिर के निर्माताओं द्वारा लिखित शिला लेख उपलब्ध नहीं हुए हैं, इस कारण प्राप्त सबूतों पर इस तरह की कल्पना की जाती है ।

जो भी हो श्रीनिवासपुरम्, एक तरफ तिरुमल, दूसरी ओर तिरुपति, तीसरी ओर चन्द्रगिरि और चौथी दिशा में आरेपल्लि रंगंपेट, एवं नागपट्ल के बीच एक चौराहे की तरह स्थित है । इसको मिले इस प्रसिद्धि के अनुसार ही यहाँ मन्दिर का भव्य निर्माण भी हुआ है । तिरुमल के बालाजी की तरह स्वंयभू न होने पर भी उनके समतुल्य में यहाँ पर कल्याण वेंकटेश्वर जी की स्थापना की गई है । उन्हीं की तरह सभी प्रकार की साज - सज्जा को संजोया गया है । विकलांग, वयोवृद्ध और अबलाओं के लिए तिरुमल पर्वत चढ़कर जाना मुश्किल काम है । इसी कारण से लोग श्रीकल्याण वेंकटेश्वर जी के दर्शन पाकर संतुष्ट हो जाते हैं ।

उस समय में श्रीनिवासमंगापुरम् अत्यन्त वैभव की स्थिति में था । विजयनगरम् के सम्राट, दूसरे देवरायलु (प्रौढ देवरायलु) ने जब तिरुमल के मन्दिर में वेद - पठन को पुन : प्रारंभ करना चाहा, इसके लिए आवश्यक 24 वेद पाठ करनेवाले पंडितों को केवल श्रीनिवासपुरम् से ही पाया था । यह बात, इस जगह की विशेषता को दर्शाता है । इन्हीं कारणों से तिरुमल के मन्दिर में दैनिक वेद - पाठ में व्यवधान आ गया

था। इसकी कमी का अनुभव करते हुए स्थानीय भक्त 'अलगप्पिरानार' नाम के तिरुक्कलिकर्नीदासर द्वारा रायलु जी के एक अधिकारी देवण्ण वडयार के कानों तक यह बात पहुँचायी गई। उन्होंने संगम वंश के दूसरे देवरायलु के नाम पर सन् 1433 में वेद पठन को पुन : प्रारंभ करवाते हुए 24 महापंडितों को नियुक्त किया। हर महीने में दो महापंडितों को इसकी जिम्मेदारी दी जाती और राजकोश से उन्हें इसके लिए श्रीनिवासपुरम् के आधे गाँव को दक्षिणा के रूप में दिया गया। लेकिन जब इन पंडितों ने इस पर होनेवाले आय को अपर्याप्त कहते हुए विनती की तो उन्हें बाकि के आधे भाग को भी देते हुए फरमान किया गया कि देवदान गाँवों के (तिरुविडैयाट्टम्) लोगों द्वारा दो सौ स्वर्ण मुद्राओं को इसके एवज में राजा की खजाने में जमा करना होगा। बाकी आधा गाँव पंडितों के लिये श्रोत्रिय के रूप में दिया गया।

श्रीवारिमेट्टु के पास 'कोंडकिन्दपल्लि' नाम से एक बहुत ही पिछडा हुआ गाँव था। उस गाँव के लोग पर्वत पर आते जाते यात्रियों की मदद करते थे। व्यापारियों की वजनदार चीजों को पर्वत पर पहुँचाना, छोटे - मोटे अन्य काम करना और गो - शाला के लिए घास काटने का काम करना आदि उनका जीवन था। वेद - पाठ करनेवाले पंडितों के लिए प्रात : और सायं समय में वे सहयोग देते थे। चन्द्रगिरि के राजा सालुवा नरसिंह जी ने राहियों के लिए अनेक मंडप और कुओं का निर्माण करवाया। कहा जाता है कि उनके दो घोडे थे। उन पर बालाजी मन्दिर के लिए सामग्री पहुँचाते थे। कहा जाता है कि वे घोडे पर्वत के ऊपर सामग्री पहुँचाकर भगवान के प्रसाद के साथ चन्द्रगिरि को लौटते थे। सालुवा नरसिंह रायलु जी ने ही यहाँ पर एक सीढियों से

युक्त कुँआ भी बनवाया था। उसके तट पर उन्होंने श्री लक्ष्मीनरसिंह जी का मन्दिर बनवाया।

इतना समृद्ध यह परिसर कल्याणी नदी में बाढ आने के कारण विनाश का शिकार हो गया। श्रीनिवासपुरम् मटिया मेट हो गया। कल्याण वेंकटेश्वर का मन्दिर ढह गया। चारों ओर अस्त - व्यस्त का वातावरण छा गया। कहने को कुछ नहीं बचा। यात्रियों के आवागमन में बाधा पहुँची। तिरुमल के शिखर पर सामग्री की आपूर्ति रूक गई। कोंडकिंदपल्लि ग्रामीण लोगों का जीवन दुर्भर बन गया। उन्होंने तुरन्त गाँव खाली करते हुए अन्य जन के आवासों की ओर प्रस्थान किया। हुंडी (कोप्पेर) की रखवाली सम्बन्धी कार्य को उन्होंने अपनाया। श्रीनिवासपुरम् के निचले हिस्से में कोप्पेर वांड्लपल्लि नाम से एक गाँव बसाकर वे रहने लगे। ये सभी लोग मन्दिर की सेवा में जुटे हुए थे। यहाँ आते समय श्री लक्ष्मीनरसिंह स्वामी को अपने साथ लाकर उन्होंने यहाँ प्रतिष्ठित किया। अचरज की बात है कि वहाँ पर जिनकी पूजा - अर्चना रुक गई, यहाँ पहुँचते ही मूर्ति की पूजाएँ आरंभ हो गईं। लेकिन मन्दिर का ध्वजस्तंभ आज तिरुमल के GNC टोलगेट में शामिल हो गया।

सौ वर्ष बीत गए। श्रीकृष्णदेवराय जी के सौतेले भाई अच्युतदेव महाराजा के शासन काल में ताल्लपाक अन्नमाचार्य जी के बडे पोते, पेदतिरुमलाचार्य का पुत्र चिनतिरुमलाचार्य ने श्रीनिवासपुर मन्दिर का जीर्णोद्धारण करने का निर्णय लिया और इसके लिए उन्होंने आवश्यक अनुमति भी प्राप्त कर ली। तिरुमलाचार्य जी को मिले सम्मान उनकी ख्याति को बिना बोले बताती है। मन्दिर के जीर्णोद्धार करते समय

उन्होंने सभी मूर्तियों को नए सिरे से बनवाकर प्रतिष्ठित करवाया । पुरानी मूर्तियों का क्या हुआ, इस बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है । उन्होंने जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई उनमें श्रीवेंकटेश्वर जी, नाच्चियार (देवी माँ), अनंत (आदिशेष), गरुड, विश्वक्शेन, पेरुमाल, आलवार, उडाइवर (रामानुज), पूर्वाचार्य, अन्नमाचार्य, सम्मिलित हैं । इतना ही नहीं उन्होंने इन सबके लिए पूजा - अर्चना - नैवेद्य आदि के लिए भी प्रबन्ध किया । इन सभी कार्यों को उन्होंने 22.3.1540 ई. तक पूरा कर दिया था । मन्दिर के शिलालेखों से इन बातों की पुष्टि होती है ।

जो भी हो श्रीनिवासमंगापुरम् इनके लिए सर्वमान्य आवास बन गया था, देखते ही देखते ख्याति प्राप्त कर ली । 'अलमेलु मंगम्मा' की मूर्ति प्रतिष्ठित करने के कारण यह प्रदेश आगे चलकर अलमेलु मंगापुरम् नाम से प्रसिद्ध हुआ । अलमेलु कोई और नहीं, पद्मावती देवी ही है । इसके लिये उनकी वाक् ही साक्षी हैं । ताल्लपाक चिन्नन्न नामक तिरुवेंगलनाथुडु, अन्नमाचार्य के चौथे पोते और चिन तिरुमलाचार्य के तीसरा छोटा भाई था । उनके ताम्रशासन में निम्नलिखित शासन अंकित है ।

पद्मावती देवी अयोनिजा है । और पद्मसंभवा भी है । किसी समय उनके जन्म को लेकर दो वंशों और जातियों में काफी झगडा हुआ । पद्मशाली (जुलाहा वर्ग) उनको अपने वंश में जन्मी बताते हैं तो जांड्रवंशी उन्हें अपना बताते हैं । फैसला करने के लिए दोनों वर्ग ताल्लपाक चिन्नन्ना के पास जाते हैं । इस बारे में अपनी असमर्थता व्यक्त करके श्रीनिवासपुर जाकर पद्मावती स्वयं से पूछने के लिए

कहा । एक दिन पद्मशाली एवं जांड्रवंशज तथा आस - पास के गाँव से छोटे - बडे, चन्द्रगिरि किले से पुरुषोत्तमरायलु जी एवं कई अन्य गणमान्य व्यक्ति अलमेलुमंगापुरम् पहुँचे और देवी माँ के सामने आसीन हुए । ताल्लपाक चिन्नन्ना जी ने देवी माँ का आवाहन् किया और उनसे इस बारे में पूछा । सबको आश्चर्यचकित करते हुए एक अशरीरवाणी ने बताया कि वे पद्मशाली वंश की बेटी हैं । इसे सुनकर पद्मशाली वंश के लोग खुशी के मारे उछल पडे और जांड्र लोग निराश होकर वहाँ से खिसक गए ।

इसके बाद पद्मशाली वंशीय लोगों ने दस हजार स्वर्ण मुद्राओं को एकत्रित कर ताल्लपाक चिन्नन्ना को समर्पित करते हुए उन्हें अपना कुल गुरु के रूप में स्वीकार किया । इस पर चिन्नन्ना जी ने श्रीवेंकटेश्वर जी के मन्दिर से दस हजार स्वर्ण मुद्राओं को मंगवाकर उन बीस हजार स्वर्ण मुद्राओं से चन्द्रगिरि तथा तोंडवाडा प्रदेशों के बीच स्थित तिम्मापुरम (तिरुमल अप्पडु) मन्दिर का निर्माण करवाया । यही इस ताम्र पत्र में उल्लिखित सार संक्षेप है । आज यह मन्दिर शिथिल पड़ गया है । शिला स्थूप श्रीवेंकटेश्वर विश्व विद्यालय के प्रांगण में पहुँचाया गया । मन्दिर के सामने जो हनुमान जी की मूर्ति है, उसे अगस्त्येश्वर क्षेत्र में बसाया गया । लेकिन महाद्वार शिखर की बुनियाद, उस पर गढे गए रामायण से सम्बन्धित झाँकियाँ अभी भी वहाँ की दीवारों पर मौजूद हैं ।

यद्यपि देवी माँ ने अपने आपको पद्मशालियों की बेटी कहा, उससे थोड़ा अधिक ही वे ताल्लपाक वंशजों की पुत्री समान है । उनकी हर बात को मानती है जैसे वे कहते हैं, वह करती है । कहते हैं कि स्वयं वेंकटेश्वर जी ने ताल्लपाक अन्नमाचार्य जी को मामा कहकर सम्बोधित

किया है। अकेले वे ही नहीं तिरुमल के श्रीवेंकटेश्वर जी के अनेकों के साथ मामा का सम्बन्ध है। आकाश राजु, तोंडमान चक्रवर्ति, आनंदालवार जैसे अनेक लोगों के नाम इसमें गिनाये जा सकते हैं।

ताल्लपाक वंशजों द्वारा मन्दिर का जीर्णोद्धार पूरा होते - होते यहाँ पर देवी माँ के साथ अनेक अन्य देवी - देवता मूर्ति स्थापित किये गये हैं और इस तरह दो सौ वर्षों तक इन देवी - देवताओं की पूजा - अर्चना भी होने लगी। इसके बाद मुसलमानों के कारण हिन्दू मन्दिरों पर खतरे के बादल मंडराने लगे। उस समय के हैदर अली की सेना ने मन्दिरों को अन्य की तुलना में अधिक नुकसान पहुँचाया। अंग्रेजों पर बदले की भावना से उनको भोजनादि की आपूर्ति करनेवाले पुलिकाट, मामंडूरु, कल्लूरु को हस्तगत करते हुए काफी समय तक वह इन्हीं प्रांतों में रह गया। 1782 ई. में चन्द्रगिरि किले पर कब्जा करके इसके आस - पास के मन्दिरों को सेना के हवाले कर दिया। तिरुमल - तिरुपति देवस्थानम् के मन्दिरों ने घूस देकर अपने आपको बचा लिया, लेकिन बाकी के सभी मन्दिर लूटपाट के शिकार हो गये।

किसी कारणवश श्रीनिवासमंगापुरम् के कल्याण वेंकटेश्वर जी का मन्दिर तिरुमल मन्दिर से अनुबंधित नहीं था, इस कारण से काफी नुकसान हुआ। देवी माँ, आचार्यगण, आलवारगण एवं अन्य परिवार देवताओं की मूर्तियों के सिर उडा दिये गए। हो सकता है श्रीवेंकटेश्वर जी की मूर्ति के आकार को देखकर वे लोग डर गये हों। इसलिए उन्होंने उनके जेवर मात्र लेकर उनकी मूर्ति को नुकसान पहुँचाये बिना छोड दिया। म्लेच्छों के प्रवेश से मन्दिर अपवित्र हो जाने के कारण वहाँ पर पूजा - अर्चना करने के लिये पुजारियों ने असहमति दिखाई। फिर किसी ने उस तरफ मुडकर ही नहीं देखा। देखते ही देखते मन्दिर

शिथिल पड गया। तिरुमल की तरह शायद वेंकटेश्वर जी यहाँ पर भी अकेले रहना चाहा होगा, इसीलिए अकेले ही रह गये। मन्दिर का शिखर चमगादड एवं कबूतरों के लिए आवास बन गया।

1801 ई. में इस प्रांत को निजाम ने अंग्रेजों को भेंट में दे दिया। मन्दिर के मुख मण्डप में बने शिला मूर्तियों की संपदा देखकर पुरातत्व विभाग ने इसे अपने अधीन कर लिया और इस बात का उल्लेख करते हुए वहाँ पर एक फलक का भी प्रबन्ध किया। श्रीवेंकटेश्वर जी की मूर्ति बाहर दिखाई न दें, इसके लिए उन्होंने मन्दिर के सामने एक दीवार खडा कर दिया।

उत्सव मूर्तियाँ, पूजा की सामग्री एवं ताल्लपाक चिन्नन्ना के ताम्रलेख को उस वंश के लोगों ने सुरक्षित रखा। इस तरह चन्द्रगिरि के समीपस्थ यज्ञशाला मन्दिर, श्रीनिवासमंगापुरम् के कल्याण वेंकटेश्वर जी के मन्दिर, तोंडवाडा के तिरुमलप्पा मन्दिर, अलिपिरि श्री लक्ष्मीनरसिंह मन्दिर, अच्युतराय अग्रहार के साथ अच्युत पेरुमाल उसी रास्ते में स्थित जिय्यंगार मन्दिर, तिरुचानूर के अलमेलुमंगम्मा मन्दिर तथा वरदराज स्वामी के मन्दिरों के साथ अनेक अन्य मन्दिरों को मटिया मेट करनेवाले हैदर अली ने अंत में क्या पाया? उसने मृत्यु को गले लगाया। वह चित्तूर जिला तक को पार नहीं कर पाया कि नरसिंगरायनि पेटा के समीप वह सन्निपात ज्वर के कारण मृत्यु का शिकार बन गया।

माना जाता है कि श्रीनिवासपुरम् के श्रीवेंकटेश्वर जी ने ही यह काम किया है। इतना ही नहीं उन्होंने काँचीपुरम के एक निर्धन ब्राह्मण के सपने में आकर कहा - मुझे तुम स्वयं ढूँढ़ निकालो। इसके बाद ब्राह्मण की नींद खुल गई। वह तुरन्त उनकी खोज में निकल पडा। लेकिन खोजता भी कहाँ? कई प्रांतों में, अनेक गाँव - शहरों

में घूमने के बाद अन्तत : श्रीनिवासमंगापुरम् पहुँचा । वहाँ उन्हें श्रीवेंकटेश्वर जी मिले । पुरातत्व विभाग के लोगों को मनवाकर उन्होंने उस जगह पर पूजा - अर्चना करना प्रारंभ किया ।

इस ब्राह्मण का नाम था सुन्दरराजस्वामी । श्रीनिवास जी के आदेशों के अनुसार उनसे जितना भी बन पडता उसी में नैवेद्य आदि का निर्वाह करते 1967 में भगवान की प्रेरणा से तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने वहाँ पर शास्त्रों के अनुरूप दैनिक पूजा - अर्चना को आरंभ किया । पहली बार पूजा - अनुष्ठान आरंभ करने की याद में 1981 से लेकर तिरुमल तिरुपति श्रीनिवासमंगापुरम् में हर वर्ष देवस्थानम्, साक्षात्कार - वैभवोत्सव का आयोजन करता है । नित्यकल्याणम् एवं ब्रह्मोत्सवों को भी आरंभ किया । तिरुमल मंदिर में आयोजित होने वाले प्राय : सभी आर्जित सेवाएँ इस मंदिर में भी आरंभ किया । शाश्वत अर्चना, अभिषेक, श्रवणा - नक्षत्र के दिन भगवान की डोला - सेवा, नित्यकल्याणम् सेवा, मंगलवार को स्वर्ण पुष्पार्चन सेवा, बुधवार को शत कलषाभिषेक सेवा, शुक्रवार को पवित्रोत्सव, श्रीपुष्प यागम् आदि सेवाएँ और उत्सव यहाँ भी आयोजित हैं । बस, प्लवोत्सव को उस समय से अभी तक आयोजित नहीं किया इसलिये कि यहाँ पुष्करिणी नहीं है ।

श्रीवेंकटेश्वर जी का साक्षात्कार वैभवोत्सव हर वर्ष आषाढ के महीने में शुद्ध उत्तर फल्गुणी नक्षत्र के समय आयोजित किया जाता है । पहले यह उत्सव मात्र एक दिन के लिए आयोजित किया जाता था, लेकिन वर्तमान में इसे तीन दिनों के लिये आयोजित किया जा रहा है । इस उत्सव के प्रमुख दिन के अवसर पर आज भी मद्रास से श्री वी.ए.के. रंगाराव जी आकर भगवान के सामने नृत्य सेवा प्रस्तुत करते

हैं । पुराने जमाने में यात्रियों - भक्तों की संख्या कम हुआ करता था । इस कारण से भेंट भी कम ही प्राप्त होते थे । लेकिन, आज भक्त और यात्रियों की संख्या कई गुना बढ गई है साथ-साथ उनके द्वारा चढाये जानेवाले भेंट भी । हम आशा करते हैं कि जिस तरह भगवान कल्याणमूर्ति ने सुंदरराजस्वामी को दर्शन प्रदान किया, उसी प्रकार हमें भी वे उस सौभाग्य को प्रदान करेंगे ।

आज तिरुमल में शिरोमुंडन का जो ‘कल्याणकट्टा’ है वह पहले यहाँ के कल्याणी तट पर था । इसके बाद उसे तिरुमल के मंगलि कुँआ में बसाया गया और बाद में बदलकर वर्तमान जगह पर स्थापित किया गया ।

*** * ***

2. तिरुचानूरु - माता श्री पद्मावती देवी

इस क्षेत्र को तिरुचानूर नाम के अलावा तिरुक्कुडवूरु - अलरमेल मंगापुरम - अलमेलुमंगापुरम - तिरुचानूरु - तिरुच्चोकिनूरु - तिरुशुकनूरु - वादिराजपुरम् - मंगपट्नम जैसे अनेक नामों से भी जाना जाता है। यहाँ की अधिष्ठात्री देवी - माँ अलमेलुमंगा जो श्री पद्मावती देवी के नाम से भी प्रसिद्ध है वे पहले वक्षस्थल लक्ष्मी के रूप में थी। पद्म से उत्पन्न होने के कारण उन्हें पद्मावती नाम दिया गया। वर्तमान में अलमेलुमंगा और पद्मावती जी को एक ही माना जाता है।

शेषाचल एवं मल्लय पल्लि पर्वतों के बीच के घाटियों में स्थित मैदान में पवित्र स्वर्णमुखी नदी बहती है। उस समय के राजा आकाशराजु ने संतान की कामना करते हुए वहाँ पर यज्ञ करने की बात सोची। यज्ञ भूमि को जब राजा जोत रहा था, तब उसमें से एक सहस्त्रदलोंवाला पद्म बहिर्गत हुआ। उसमें एक नन्हीं - सी बच्ची को भी देखा था। पद्म से उत्पन्न होने के कारण उसे पद्मावती का नाम दिया था। वर्तमान में तिरुचानूर की देवी माँ का नाम भी पद्मावती ही है। एक अन्य पौराणिक कथा के अनुसार, श्रीनिवास जी द्वारा बारह वर्षों तक कठोर तपस्या करने के कारण यहाँ पर श्री महालक्ष्मी स्वयं सरोवर में सुवर्ण पद्म से उत्पन्न हुई है। इसी कारण से यहाँ की पुष्करिणी को 'पद्मसरोवर' कहते हैं। इसके तट पर वेंकटेश्वर स्वामी जी द्वारा प्रतिष्ठित भगवान सूर्य का मन्दिर स्थित है।

614 ई. में कडवन पेरुन्देवी नाम की सामंत रानी तिरुवेंकट मुडैयान के दर्शनार्थ यहाँ आईं थी। उस समय यह प्रांत तिरुक्कुडऊरु

नाम से प्रसिद्ध था। पल्लव चोल राजाओं के समय यह प्रांत (तिरुचानूरु) तालूक का केन्द्र बना हुआ था। उस समय तक तिरुपति शहर बना नहीं था। लेकिन, कपिलतीर्थं के पास कोत्तूरु नाम से एक बहुत ही छोटा गाँव हुआ करता था। यहाँ पर स्वर्णमुखी नदी जल की उपलब्धि के कारण तिरुमल के लिये केन्द्र बना था और अनेक क्रिया - कलाप यहाँ से किये जाते थे। वेंकटेश्वर जी की प्रतीकों के रूप में तिरुवेंकटत्तु पेरुमाणाडिगल, तिरुविलम् कोइल् पेरुमाणाडिगल, तिरुमंत्र शालै पेरुमाणाडिगल् नामों से तीन मूर्तियों की पूजा - अर्चना होती थी। प्रथम मूर्ति, तिरुमलदेव (वेंकटेश्वर स्वामी) का प्रतीक है। दूसरी मूर्ति 'बालालयमूर्ति' है। तीसरी मूर्ति, तिरुमंत्र और वैष्णव मत को स्वीकार करनेवाले सन्निधिदेव के प्रतीक हैं।

कडवन् पेरुंदेवी (सामवै राणी) ने तिरुवलम् कोइल (मन्दिर) में मणवाल पेरुमाल (भोगश्रीनिवासमूर्ति) की रजत मूर्ति को बनवाकर प्रतिष्ठित करवाया। इस मूर्ति के लिए उन्होंने आपादमस्तक अनेक आभूषण भी बनाया। विशाल भू भाग (4000 वर्गमाप) भी खरीदकर भेंट में दिया। इतना ही नहीं एक वर्ष में दो ब्रह्मोत्सवों को करवाने के लिए आदेश दिये। वे चाहती थी कि उनके द्वारा दिये गये दान संबंधी सूचना को शाश्वत रूप प्राप्त हो, इसके लिये उन्होंने सविनय यह प्रस्तावित किया कि उनके दान संबंधी सूचना को सुरक्षित रखनेवाले श्रीवैष्णव के चरण इनके लिये शिरोधार्य है। पल्लव प्रगडैय्यर की पुत्री, शक्ति विकंटन नामक सामंत राजा की पट्टरानी जो तमिल देश से तेलुगु प्रांत में बहू बनकर आई, उनके शिला शासन ही ति.ति.दे. के प्रथम शिलाशासन हैं। इनसे पूर्व हमारे पास शिलाशासन नहीं होते थे।

प्रथम राजा राजेन्द्रचोल के समय (ई.1011 - 1045) मन्दिर के क्रिया - कलापों की जांच - पडताल हुई । उस समय यह प्रांत राजेन्द्रचोल मंडलम् या जयं गोंडचोल मंडलमु नाम से प्रसिद्ध था । तिरुचानूर के समीप स्थित तिरुमंड्यम ग्रामीण सभा के लोगों ने तिरुच्चोविनूरु सभा के लोगों के साथ 23 स्वर्ण मुद्राओं को लेकर समझौता किया था कि वे श्रीवेंकटेश्वर जी के मन्दिर में कर्पूर आरती के साथ - साथ 24 घी के दिये भी जलाया करेंगे । लेकिन इन लोगों ने केवल दो दिये जलाये और बाकी के दियों को जलाना छोड दिया । कोर्रमंगलमुडैयान नाम के चोल राज्य के अधिकारी (गवर्नर हो सकते हैं) तक यह बात पहुँची, तो उन्होंने शुक गाँव के चोल न्यायालय में इस पर विचार - विमर्श करके तिरुमंड्यम सभा के लोगों से 23 स्वर्ण मुद्राओं को वसूल करके उन मुद्राओं को खजाने में जमा करवाके फैसला सुनाया कि आगे से मन्दिर के कर्मचारी ही दिया जलाया करेंगे ।

इसी तरह की एक और घटना घटित हुई । तिरुच्चुकनूर से सटकर जोगुला मल्लारम् (योगि मल्लवरम्) नाम का गाँव है । वहाँ पर तिप्पलाधीश्वरमुडैय नायनार (परमेश्वर स्वामी) का मन्दिर स्थित है । प्रतिदिन स्वामी के अभिषेक और नैवेद्य के लिए जयंगोडाशोला ब्रह्ममारायन नाम के व्यक्ति ने 26¼ कोठरों का स्वर्ण दिया था । तीसरे राजा, राज राज चोल (ई.1216 - 1248) के समय यह घटना घटित हुई । इस सोने के बारे में उसके स्थानीय राजा वीर नरसिंहदेव यादवरायलु के पास शिकायत के रूप में बात पहुँची । उन्होंने इस पर विचार - विमर्श करवाया । तिप्पलाधीश्वरमुडैय नयनार एवं महेश्वर से पूछताछ करके उसे खजाने में जमा करवाया । यह था वीरसिंगदेवयादवरायलु जी का

सामर्थ्य । स्थानीय लोग होने के कारण यादव राजाओं ने इस देवस्थानम् के लिए अपनी बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान की । 1191 - 1246 ई. के समय में वेंकटगिरि को प्रमुख शहर बनाकर, तिरुक्कालत्ति देव यादवरायर ने इस प्रांत पर शासन चलाया था । इन्होंने ही तिरुचानूर को तिरुमल देवस्थानम् को दान में दिया था । उन्हीं के समय में बलराम - कृष्ण जी का प्राचीन मन्दिर (अडगीय पेरुमाल) का निर्माण हुआ था । इसके बाद वरदराज (सुन्दरराज) स्वामी एवं देवी माँ के मन्दिर इसके दोनों तरफ बनवाये थे । इस तरह से मंगापुरम् में एक ही स्थान पर तीन मन्दिर बनाये गए । इतिहासकारों का मानना है कि श्रीकृष्ण का मन्दिर ई. के 1221 में, सुन्दरराजस्वामी (वरदराज मन्दिर) ई. के 1541 वर्ष को तथा माँ पद्मावती का मन्दिर ई. के 17 वीं शताब्दी में निर्मित हुईं । वास्तव में 18 वीं शताब्दी के अन्त में ही पद्मावती माँ के मन्दिर का जीर्णोद्धार पूरा हुआ और पद्मावती देवी, यहाँ पर स्थाई रूप से बस गयी । यही कारण है कि उनके नाम पर न कोई सम्पत्ति है और ना हि कोई स्थिर-चर-संपदा और पारंपरिक या खानदानी आभूषण हैं । आज जो भी संपत्ति मौजूद है, वह सभी तिरुक्कालत्ति देव यादवरायर के बाद आई हुई संपदा ही है । पद्मावती देवी को विशेष देवी के रूप में किसी भी शासन में सूचित नहीं किया गया । ताल्लपाक अन्नमाचार्य जी या उनके वंशजों ने 'पद्मावती' (शब्द) के बारे में अपने संकीर्तनों में प्रस्तावित नहीं किया । 'पद्मावती' शब्द का प्रयोग ताल्लपाक चिन्नन्न के ताम्रपत्र शासनों में ही मिलता है । उन्होंने जिस अलमेलमंगा की स्तुति की, वह श्रीपति की वक्षःस्थल लक्ष्मी (व्यूहलक्ष्मी) ही थी । अब वर्तमान में पद्मावती माँ, वीरलक्ष्मी के रूप में गिनी जा रही है । यात्रियों के मन में जो संदेह पैदा होता है, उसके निवारण के लिये पद्मावती देवी एवं

अलमेलमंगम्मा में अभिन्नता स्थापित करना अवश्यंभावी हो गया है । इसीलिये 'पंचमी तीर्थम्' के दिन श्रीपति की ओर से हल्दी - कुंकुम एवं रेशमी वस्त्रों को गौरवपूर्वक अलमेलमंगम्मा को भेंट के रूप में भेजना एक रुढ़ि बन गई ।

अलमेलमंगम्मा की बहुत सारी प्रचलित कहानियाँ हैं । एक इस रूप में है - नवदंपति के रूप में जब श्रीपति और अलमेलमंगम्मा तिरुमल पहुँचे, तब पूरे शेषाचल पहाड़ को घूम आकर श्रीपति ने यह पाया कि उस पर्वत पर नीम और करीपत्तों के पेड़ नहीं हैं । उन्होंने मन में यह सोचकर कि नीम के पेड़ का अभाव भी ठीक है लेकिन करीपत्तों का पेड़ होना अनिवार्य है, श्रीपति ने अलमेलमंगा को करीपत्तों के पेड़ को ले आने के लिये भेजा । इस पर वह ढूँढती-ढूँढती, रूठकर अलमेलुमंगापुरम् पहुँची और वहीं पर ठहर गई । वैसे भी पद्मसरोवर (मंगापुरम्) उनका माईका ही है ना । इसके बाद वेंकटेश्वर जी ने ना ही उनको वापस बुलाया, और ना ही वे वापस लौटीं । फिर भी प्रतिदिन रात के किसी पहर को वे अलिपिरि पहुँचते हैं और वहाँ के पादुक मंटप में चप्पलों को धारण कर अलमेलुमंगापुरम् पहुँचते हैं । वहाँ अलमेलुमंगा जी से मिलकर वापस अलिपिरि पहुँचते हैं और चप्पलों को छोड़कर सुप्रभात सेवा के समय तक तिरुमल पहुँच जाते हैं । पता नहीं चलता कि कितनी ही बार वे अलमेलमंगापुरम् तक पैदल चले, लेकिन उनके घिसे हुए चप्पल इसके लिये साक्षी बनते हैं । मान्यता है कि अलमेलुमंगाजी के कृपाकटाक्ष से ही स्वामी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है । माँ के दर्शन के बिना स्वामी का साक्षात्कार दुर्लभ ही माना जाता है । जब पहली बार अन्नमाचार्य इस पर्वत पर चढ रहे थे, उस समय भूख के मारे

छटपटा रहे थे, माँ अलमेलुमंगा ने स्वयं उन्हें प्रसाद खिलाया था । इसके बाद ही उन पर श्रीवेंकटेश्वर जी का कटाक्ष हुआ । इसके बाद ही वे एक साधारण अन्नमय्या से प्रसिद्ध वाग्गेयकार बन गये और एक संकीर्तनाचार्य के रूप में ख्याति प्राप्त की । और तो और श्रीवेंकटेश्वर जी ने स्वयं उन्हें 'मामा' कहकर सम्बोधित किया । इस तरह प्रतिदिन के विवाह महोत्सव (कल्याणोत्सवम्) में ताल्लपाक के वंशज कन्यादाता के रूप में स्थापित हो गये ।

तातय्यगुंटा की गंगम्मा, श्रीवेंकटेश्वर जी की एक बहन है । इसी कारण से तिरुपति में होनेवाली गंगम्मोत्सव (तेलुगु भाषा में उसको गंगजातरा कहते हैं) में हर वर्ष तिरुमल से गौना पहले गोविंदराजस्वामी मन्दिर पहुँचती है, और वहाँ से गंगम्मा मन्दिर पहुँचती है । अलमेलमंगम्मा यह कभी नहीं सोचती कि श्रीवेंकटेश्वरस्वामी अपने ही लोगों को संपदा दे रहा है क्योंकि श्रीपति, अलमेलमंगा को भी हल्दी - कुंकुम भेजते हैं ना!

तिरुचानूर के पद्मावती जी के मन्दिर में हर वर्ष कार्तिक ब्रह्मोत्सव, वसंतोत्सव, पवित्रोत्सव, श्री पुष्प यागम्, प्लवोत्सव (डोंगा) एवं वरलक्ष्मीव्रत का आयोजन करते हैं । प्लवोत्सव के दौरान पांच दिनों में तीन तीन देवताओं की शोभायात्रा निकाली जाती है । पहले दिन कृष्णस्वामी जी का, दूसरे दिन सुन्दरराजस्वामी जी का । बाकी के तीन दिनों में माँ पद्मावती प्लवन में विहरण करती हैं । वसंतोत्सव के दौरान देवी माँ स्वर्ण रथ पर जुलूस में निकलती है । इसी तरह देवी माँ पद्मावती जी के लिए नवरात्रि महोत्सव भी आयोजित किये जाते हैं । गोकुलाष्टमी के दिन बलराम कृष्ण जी की विशेष पूजाएँ होती हैं । सुन्दरराजस्वामी के

अवतारोत्सव तीन दिनों के लिए मनाये जाते हैं, योगि मल्लवरम् में स्थित पराशरेश्वरस्वामी जी के मन्दिर में उस मन्दिर के नियमानुसार पूजा - अर्चना कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। यह मन्दिर तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के अधीन नहीं है, लेकिन फिर भी यह एक प्राचीन मन्दिर है। यहाँ पर कुल ग्यारह शिलालेख मिलते हैं।

तिरुपति से चार - पांच किलोमीटर की दूरी पर स्थित होने के बावजूद भी तिरुचानूर आज तिरुपति शहर का ही हिस्सा लगता है। रामानुजाचार्युलु जी के द्वारा तिरुपति में श्रीगोविंदराजस्वामी की मूर्ति को प्रतिष्ठित करने के बाद ही तिरुपति का विकास हुआ है। उससे पूर्व उस मन्दिर में पार्थसारथी एवं आंडालम्मा जी की मूर्तियाँ एक छोटे - से मन्दिर में स्थापित होते थे। शहर भी तब तक नहीं बना था। रामानुजाचार्य जी के आगमन से तिरुपति का विस्तार होने लगा। इसके साथ ही तिरुचानूर का महत्व भी कम होने लगा। लेकिन लाल चन्दन की लकडी से बनी पुतलियों के लिए एवं पंचलोहों में बनी मूर्तियों के लिए तिरुचानूरु काफी ख्याति प्राप्त की है। योगिमल्लवरम् में परमेश्वर जी के मंदिर के साथ - साथ यहाँ काली माता का भी एक मन्दिर विशेष रूप से स्थित है।

* * *

3. अप्पलाइगुंटा - श्री प्रसन्न वेंकटेश्वर स्वामी

तिरुपति से 20 कि. मी की दूरी पर तिरुचानूरु से चेन्नै जानेवाले मार्ग पर यह अप्पलाइगुंटा स्थित है। तोरण द्वार के कारण इसे आसानी से पहचाना जाता है। मान्यता के अनुसार श्रीवेंकटेश्वर स्वामी यहाँ पर माँ पद्मावती जी के साथ प्रकट हुए थे। माँ गोदादेवी भी इस मन्दिर में, माँ पद्मावती जी के समानांतर में उन्हीं की तरह मन्दिर के अंदर स्थित हैं। अर्नुण सरोवर ही आज अप्पलाइगुंटा में परिवर्तित हुआ है। यह मन्दिर से थोड़ी दूरी पर स्थित है। इस सरोवर के पद्म पुष्पों को पद्मावती जी की पूजा - अर्चना के लिए उपयोग में लाया जाता है। इस स्थान के नाम के पीछे एक प्रचलित कहानी है। किसी समय यहाँ पर अप्पुलय्या नाम का व्यक्ति हुआ करता था (तेलुगु में अप्पु का मतलब उधार) वह सभी से उधार लिया करता था। केवल एक व्यक्ति से उसने उधार नहीं लिया था। लेकिन यह सोचकर कि सभी लोग उसकी बात मान जायेंगे, उसने यह घोषित कर दिया कि अप्पुलय्या ने उससे भी उधार लिया। इस पर अप्पुलय्या ने गुस्से में आकर एक पत्थर पर ''मैंने ऋण नहीं लिया'' लिखकर सरोवर में उसे डाल दिया। लेकिन वह पत्थर डूबने की बजाय तैरने लगा। इसीलिए यह सरोवर अर्नुण सरोवर के नाम से प्रसिद्ध हुआ और बाद में अप्पुलय्या गुंटा और अंतत : अप्पलाइगुंटा में परिवर्तित हुआ।

तिरुमल के श्रीवेंकटेश्वर जी ने नारायण वन में पद्मावती जी से विवाह करके, हल्दी से लिप्त वस्त्रों में जब तिरुमल लौट रहे थे, उस समय इस जगह को सुविधाजनक पाकर कुछ देर के लिए आराम किया। उसी जगह पर सिद्धेश्वर योगी नाम का व्यक्ति वहाँ पर तपस्या

कर रहा था । उन्होंने उस समय आँख खोलकर जब देखा तो इस दिव्य दम्पत्ति को सामने पाया । उनकी खुशी का ठिकाना न रहा । उन्होंने उनके चरणों में गिरते हुए, प्रार्थना की कि वे दोनों वहीं पर रह जाय । श्रीवेंकटेश्वर जी ने एक मुसकान के साथ मूर्तियों के रूप में प्रस्तुत होकर उनको अनुग्रहीत किया । अत : इस प्रकार यहाँ पर प्रसन्न वेंकटेश्वर जी के रूप में प्रकट हुआ ।

इस मन्दिर के निर्माण के समय से सम्बन्धित कोई सूचना उपलब्ध नहीं है । लेकिन इसके मुखद्वार के दीवार पर ई. के 1585 समय का वेंकटपतिरायलु द्वारा प्रदत्त दान सम्बन्धी शिलालेख उपलब्ध है । अर्थात् मन्दिर इससे पहले ही निर्मित हुआ है । स्थानीय रूप से कार्वेटिनगर राजाओं का शासन था, इस कारण से मन्दिर की व्यवस्था उन्हीं के हाथों में थीं । तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने इस मन्दिर को अपने अधीन लेते हुए इसका जीर्णोद्धार किया और 30 अप्रैल 2006 को इसका महासंप्रोक्षण करके इसके विकास में जुट गया ।

इस मन्दिर में प्रतिवर्ष ब्रह्मोत्सव एवं पवित्रोत्सओं का निर्वाह किया जा रहा है । यहाँ के प्रसन्न वेंकटेश्वर जी प्रसन्न चित्त होकर अपने वरदहस्त के साथ भक्तों को दर्शन देते हैं । बीमारियों से पीडित भक्तगण यहाँ के विशाल हनुमान जी (वायुनंदन) की पूजा - अर्चना में भाग लेकर रोगों से मुक्त हो रहे हैं । तिरुपति डिपो से आर. टी.सी की बसें एवं आस - पास के गाँवों से आटो, भक्तों को यहाँ लाती और ले जाती हैं ।

इससे पूर्व उल्लेख किया गया था कि तिरुचानूरु शिला लेखों में जिन तिरुविलं कोइल पेरुमानाडिगल, तिरुमंत्रशालै पेरुमानाडिगल, तिरुवेंकटत्तु पेरुमानाडिगल को ही हमने क्रमश : भोग श्रीनिवास, कोलुवु

श्रीनिवास एवं उग्र श्रीनिवास के रूप में माना । लेकिन यह आश्चर्य का विषय ही है कि इनकी कोई अर्चामूर्ति नहीं है । आसपास में जो भी अर्चामूर्तियाँ उपलब्ध हैं वे श्रीनिवासमंगापुरम् के कल्याण वेंकटेश्वर स्वामी, अप्पलाइगुंटा के प्रसन्न वेंकटेश्वर स्वामी एवं नारायणवनम् के कल्याण वेंकटेश्वर स्वामी ही हैं । शिलालेखों में अन्यान्य जगहों पर प्रसन्न वेंकटेश्वर एवं कल्याण वेंकटेश्वर कहकर भी उल्लेख हुआ है । इस तरह का उल्लेख तिरुमल के वेंकटेश्वर जी को सम्बोधित करते हुए हुआ है या अलग से अन्य प्रांतों में इन नामों के देवताओं को सम्बोधित किया गया है, यह शोधाध्ययन के बाद ही पता चलेगा । तिरुमल मन्दिर के कार्यक्रमों की जाँच-पड़ताल पहले तिरुचानूरु को केन्द्र बनाकर की जाती थी, बाद में तिरुमल इसके लिये केन्द्र बना । अर्चकगण एवं सभैयारगण यहीं रहते थे । शिलालेख एवं दस्तावेज यहीं बनवाते थे । इसके प्रमाण में क्या सही है, क्या सही नहीं है, यह जान पाना कठिन है ।

इससे पूर्व उल्लेख की गई घटना में तिरुमंड्यम सभा के लोगों द्वारा तिरुचानूरु सभा के लोगों से 23 स्वर्ण मुद्राएँ लेना 24 दियों के बदले दो ही दिये जलाये जाने और चोल अधिकारी के गुस्से का शिकार बनना इसके प्रमाण हैं । किसी भी प्रकार की सुविधा के अभाव में हम यह कह नहीं सकते कि उन दिनों तिरुमल के मन्दिर में दिये जलाये जाते थे या गाँव के समीपवाले अप्पलाइगुंटा प्रसन्न वेंकटेश्वर जी के मन्दिर में ही जलाते थे । जो भी हो हम श्रीप्रसन्न वेंकटेश्वर जी को शत - शत प्रणाम अर्पित करते हैं।

* * *

4. कार्वेटिनगरम् - श्री वेंणुगोपाल स्वामी

तिरुपति से 58 कि.मी. की दूरी पर यह प्रांत काडु - वेट्टि नगरम् मतलब - जंगल को काटकर समतल बनाया गया नगर है। कार्वेटिनगरम् के राजाओं ने इसपर अपना शासन चलाया । वे सूर्यवंशीय थे । करिकाला चोला के पोते तोंडमान इलयान तिरयान का पोता नारायणराजु था। वही कार्वेटिनगरम् राजाओं का मूल पुरुष था। नारायण वन उन्हीं के नाम से बना है ।

इस प्रांत पर प्रथम चोल राजा, पल्लवराजा, बाद के चोलराजा, यादवराजा, विजयनगर राजाओं के बाद अंततोगत्वा कार्वेटिनगरम् राजाओं ने शासन चलाया था । यहाँ स्थित वेणुगोपाल सवामी तक पहुँचने के लिए अप्पलाइ गुंटा से दो मार्ग हैं । पहला मार्ग पुत्तूर से, और दूसरा रायल चेरुवु तथा पच्चिकापलम् से होकर है। दूसरा मार्ग सुन्दर रमणीय पर्वतीय प्रांतों से गुजरता है ।

यादव राजाओं ने अपने शासन काल में अनेक कृष्ण मन्दिरों को बनवाया है । लोगों का मानना है कि उनमें से यह भी एक है । फिर भी कुछ लोगों का मानना है कि ई. के 1719 को कठारी शाल्वमाकराजु, ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था । लेकिन यह पता नहीं चलता है कि मन्दिर को नए रूप से निर्मित किया या जीर्णोद्धार किया था। इस मन्दिर के प्रांगण में पत्थरों पर चोल राजा त्रिभुवन चक्रवर्ति, तीसरे राजराज देव का शिथिल शिलालेख हमको दिखाई देता है । इसमें चार शिव मन्दिरों के लिए भूदान, देने की बात एवं वीर नरसिंगदेव यादवराय नाम के एक साल्वराजा का नाम भी उल्लिखित है ।

इस मंदिर में रुक्मिणी एवं सत्यभामा समेत वेणुगोपालस्वामी विराजमान हैं। एक और उप - मंदिर में हनुमान सहित सीता, राम और लक्ष्मण की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इस मंदिर के प्रमुख शिखर (राजगोपुरम्) का जीर्णोद्धार 30 लाख रुपयों के व्यय से करते हुए 7 मई 2006 के दिन तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने इस पर कलश की स्थापना की। यहाँ पर एक सुन्दर और विशाल स्कंद - पुष्कर भी है। इसके तट पर स्वामी लक्ष्मणाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित माँ राजराजेश्वरी देवी का मंदिर स्थित है।

श्री वेणुगोपाल स्वामी के लिए 9 दिनों का ब्रह्मोत्सव, 3 दिनों का तेप्पोत्सव (प्लवोत्सव), दो दिनों का पवित्रोत्सव विशेष रूप से मनाए जाते हैं। गोकुलाष्टमी की पूजा अर्चना का भी काफी महत्व है। मूल मूर्तियाँ, वेणुगोपाल स्वामी, रुक्मिणी एवं सत्यभामा के पीछे गौ की मूर्ति भी देखी जा सकती है। उत्सव मूर्तियों को जुलूस में ले जाते समय उनके साथ चाँदी में बने एक सुंदर गाय की मूर्ति भी देखी जा सकती है। यह सबका मन मोह लेती है। 1989 में इस मंदिर को तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने अपने अधीन ले लिया है ।

माना जाता है कि भगवान श्री वेणुगोपालस्वामी, इससे पूर्व पापविनाशनम के पैदल मार्ग पर स्थित समाधियों के पास, यानी हथी रामजीमठ के वेणुगोपालस्वामी मंदिर के पास रहते थे। रेड्डी राजाओं का तिरुमल तिरुपति के प्रति लगाव के कारण उन्होंने वहाँ के मूल - मूर्ति को ले आकर निस्संकुदुर्गम में मंदिर का निर्माण करके उन मूर्तियों को प्रतिष्ठित किया। हो सकता है कि यह घटना उस समय की है जब सालुवनरसा रेड्डी को पिठापुरम से बुलवाकर चालुक्य चोल भूपति विमलादित्य जी ने उन्हें शेषाचल के शासन की जिम्मेदारी सौंपी

थी । इसके बाद, कार्वेटिनगरम् के राजाओं ने निस्संकुदुर्गम से इस मूलमूर्ति को ले आकर वेणुगोपालस्वामी के मंदिर में पुन : प्रतिष्ठित किया ।

निस्संकुदुर्गम्, कार्वेटिनगरम् से सात - आठ कि. मी. की दूरी पर नगरी प्रांत के पर्वतों में स्थित है । नारायणवनम् से तो और भी पास पडता है । माना जाता है कि, इसे निस्संकुमल्लु (पल्लव पेरुंजंगन के पुत्र कोप्पेडु जंगन) ने जब तेलुंगर (काकति गणपति देव) को उत्तर की ओर भगाया था, उस समय अपनी सुरक्षा के लिए उसने इसका निर्माण किया होगा । नारायणवनम् पर जिन - जिन राजाओं ने शासन किया है, उन सभी के लिए यह निस्संकुदुर्गम केन्द्र स्थान बना रहा ।

तिरुमल के श्रीनिवास जी आकाशराजू तथा उनके छोटे भाई तोंडमान चक्रवर्ती, के दामाद हैं । इन्हीं के वंशज कार्वेटिनगरम् राजाओं के भी वे दामाद होते हैं । यही कारण है कि जब भी वे तिरुमल में पधारते थे, उन्हें राज सम्मान के साथ मंदिर में ले जाकर विशेष दर्शन करवाते थे । जब तक कार्वेटि राजाओं का जमाना रहा वे इन मंदिरों के धर्मकर्ता हुआ करते थे, लेकिन आज वे नहीं रहे हैं । तिरुवल्लूर, तिरुत्तणी, तिरुवालंगाडु (सभी आज तमिलनाडु में हैं), नागलापुरम, नारायणवनम, अप्पलाइगुंटा जैसे प्रांत उनके अधीन थे । उनके सौभाग्य के बारे में क्या कहना ! तमिलनाडु के कुछ हिस्से पर उनका अधिकार था । तिरुत्तणी तथा अत्तिमंजेरिपेटा तालूक उनके शासन में आते थे ।

साल्व रेड्डियों तथा कार्वेटि शासकों के बीच की शत्रुता के कारण ही साल्व रेड्डियों का आमूल विनाश हुआ, तथा अपने मृत्यु के समय उनके द्वारा दिए गए शाप के कारण ही, सात पीढियों के बाद

कार्वेटिनगरम् के वंशज भी पूरी तरह से मिट गए । यह सर्वविदित तथ्य है कि आज कार्वेटि के वंशज कोई भी शेष नहीं रहे हैं । इस गाथा से बोध होता है कि साल्वरेड्डी प्रथम पीढ़ी के नहीं रहे होंगे । लगता है कि, वे दूसरी पीढी के नंदिगुंटा वेंकट रेड्डी के परिवार के हैं । इन सबके मरने के बाद भी इनके वंश की एक लड़की 'बंगारम्मा' जीवित रही और बाद में देवता का रूप धारण कर गई । आज वही इस कार्वेटीनगरम् की ग्रामदेवता मानी जाती है । वर्तमान में, बंगारु गंगम्मा के नाम पर उनका उत्सव मनाया जाता है ।

कार्वेटिनगरम् के राजा बडे कलाप्रेमी रहे हैं । इनके दरबार में अष्टदिग्गज कवि हुआ करते थे । वर्ष 1884 में ही श्री भारती लीला सदन 'मुद्राक्षरशाला' नाम के मुद्रणालय की स्थापना हो चुकी थी । इसमें उनके उत्तम ग्रंथों का प्रकाशन किया गया । प्रखर ज्योतिषी पंडितों द्वारा कार्वेटि राजदरबार का पंचांग भी यहीं से प्रकाशित होता था । हथी रामजी मठ महंत इसे ही तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के पंचाग के रूप में वर्ष 1935 तक अपनाते रहे हैं ।

कार्वेटिनगरम् के कवियों में पोलिपेद्दिय वेंकटरायकवि काफी प्रसिद्ध हैं । इन्होंने वेणुगोपाल शतक की रचना की थी । इन्होंने इस शतक को वेणुगोपालस्वामी को ही समर्पित कर दिया था । एक और कवि सारंगपाणी भी अपनी रचनाओं के लिए प्रसिद्ध रहे हैं । उन्होंने 'सारंगपाणी - वेणुगोपाल पद' नाम से रचना की है । ग्रामदेवता बंगारम्मा के बारे में भी ''वेणुगोपाल की सहोदरी, कंबुकंठी'' कहकर उनकी स्तुति की । सारंगपाणी ने गरुड सेवा का वर्णन करते हुए गीत लिखा है जिसका अर्थ इस प्रकार है -

ये देखो वेणुगोपाल स्वामी अपने वाहन पर सवार होकर भक्तों को आनंदित करने राजमार्ग पर निकले हैं ! उनका सुंदर मनमोहक रूप देखते ही बनता है ।

कहा जाता है कि उनका गरुड वाहन इतना बडा था कि उस पर 40 लोग एक साथ सवार हो सकते थे । यह कांचीपुरम में आयोजित होनेवाले गरुड सेवा में वाहन के बराबर के आकार का है ।

उपलब्ध हुए शिलालेख के अनुसार कार्वेटिनगराधीश इम्मडि नरसिंह ने इस चंद्रगिरि को ई. के. 1000 वीं वर्ष में निर्मित किया था । ये यादव राजा थे । सूर्यवंशीय कार्वेटिनगर के राजाओं और अनंतराजु पेटमट्ल राजाओं के बीच रिश्ता भी है ।

* * *

5. नारायणवनम् - श्री कल्याण वेंकटेश्वर

तिरुपति से 40 कि.मी.की दूरी पर स्थित यह गांव कभी काफी प्रसिद्ध था । इतना ही नहीं इस प्रांत में यह प्राचीनतम भी है । पुराणों में इसका नारायणपुरम् नाम से उल्लेख हुआ है । पल्लव राजाओं के समय में भी इसी नाम से यह गांव जाना जाता था । चोल राजाओं ने इसे नारायणवनम् कहा । विजयनगर राजाओं के समय यह नारायणवरम् कहा जाता था । स्थानीय लोग इसे नान्नारम् नाम से पुकारते हैं ।

किसी समय को इस पर आकाशराजू का शासन था । उनके भाई तोंडमान चक्रवर्ती की हमेशा इस पर नजर हुआ था । इसी जगह पर पद्मावती देवी जी पली बडी थी । तिरुमल वेंकटेश्वर जी का यह ससुराल भी है । इतना ही नहीं, यहीं पर उनका विवाह भी हुआ था । मजे की बात तो यह है कि, इस विवाह को देखने के लिए पधारे तीन करोड़ देवतागण, प्रमुख रूप से शिवजी एवं उनके अनुचरों को, इस प्रांत से लगाव हो जाने के कारण इन्हीं परिसरों में प्रवासियों की तरह रह गए । उन्होंने, सदाशिवकोना, कैलाशनाथकोना, रामगिरि, सुरुटुपल्लि जैसे पवित्र स्थानों एवं पुण्य तीर्थों को अपना आवास बना लिया ।

सूर्यवंशीय करिकालचोला के पोते हैं तोंडमान इलयान तिरयान । उनके पोते हैं नारायणराजु । मान्यता है कि इन्हीं के नाम पर इस गाँव का नाम नारायणवनम् रखा गया । कार्वेटि राजाओं ने स्वयं इनको अपने वंश का मूलपुरुष कहा है । श्रीवेंकटाचलम के महिमागान में भी चोल राजा का उल्लेख हुआ है । महाभारत के समय से ही चोल राजाओं का अस्थित्व पाया जाता है । उस समय उन्होंने युद्ध में कौरवों का साथ दिया था । इसी कारण से श्रीवेंकटाचल महिमागान (श्रीवेंकटाचल

माहात्म्यम्) का समय निर्धारण नहीं हो सका है। लेकिन निस्संदेह इतना तो कहा जा सकता है कि कलियुग के आरंभ में यह घटित हुआ था। अर्थात्, लगभाग 5 हजार वर्ष पूर्व यह घटित हुआ है। इस कारण से हम कह सकते हैं कि यह गांव 5 हजार वर्ष पुराना है।

चूँकि, पद्मावती देवी ने स्वयं को जुलाहा (पद्मशाली) वंश की बेटी ताल्लपाक चिन्नन्न के मुँह से कहा है, इस कारण से, इस गांव में इसी वंश के लोगों की बहुलता पायी जाती है। यहाँ पद्मावती जी के मंदिर के सामने पत्थर में बनी बडी सी चक्की देखा जा सकता है। यह इतनी बडी है कि इसे आज के लोगों द्वारा चलाना मुश्किल ही है। मंदिर के कई जीर्णोद्धार होने पर भी उस समय की याद में इसे यहीं छोड दिया गया है। इससे भी इस मंदिर की प्राचीनता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

यह अरुणा नदी की घाटी है। यह नदी वेंकटेश्वर जी की निगरानी में उस गांव / प्रांत की परिक्रमा करती बहती है। नदी के इस ओर नारायणवनम् है तो, उस पार केंपुलापालेयम् स्थित है। इसे आकाशराजू की गृह देवता अवनाक्षम्मा का आवास स्थान माना जाता है। इस राजा के समय में यहाँ पर मिट्टी का एक किला भी होता था। यहाँ के राम जी की मूर्ति को उस ओर ले जाने पर यह पूर्ण रूप से शिवपुरी में बदल गया है। यानी उस ओर विष्णुपुरी है और इस ओर शिवपुरी। जिस तरह कांचीपुरम् में शिव कंची और विष्णु कंची हैं, उसी तरह यहाँ पर भी बना है। यहाँ मरकतवल्ली समेत श्री अगस्त्येश्वर स्वामी (तिरुवघट्टाशुरमुडैय नायनार) मंदिर, पराशरेश्वर मंदिर, गणाधिपति गणेश का मंदिर, पराशरेश्वर का मंदिर, वीर भद्र मंदिर, शक्ति विनायक मंदिर, इन सबसे बढकर शक्ति स्वरूपिणी महिषासुरमर्धिनी मानी जानेवाली

अवनाक्षम्मा मंदिर सभी इस केंपुलापालेम में स्थित हैं। इन सभी मंदिरों में प्रति दिन पूजा - अर्चना का निर्वाह होता है। अष्टभुजि अवनाक्षम्मा जी का अकेले में दर्शन करना थोडा भयावह होता है। तीन मंजिलों के बने महाशिखर के नीचे माँ विराजमान है। मंदिर में जगह जगह पर देवी माँ की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। यहाँ इस मंदिर के सभामंडप का जीर्णोद्धार ई.के. 1747 में राजा मंडलेश्वर शेषाचलपति राजुदेव महाराज ने करवाया था।

प्रकाशमान सात मंजिला गोपुर जो अनेक देवता मूर्तियों का आश्रय बना है, उस नारायणपुर के मंदिर में कल्याण वेंकटेश्वर जी विराजमान हैं। इनका यहाँ बसने के पीछे एक दिलचस्प कहानी प्रचलित है। वही श्री वेंकटाचल माहात्म्यम् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

देवताओं ने एक बार गंगा नदी के तट पर यज्ञ प्रारंभ किया। वहाँ से गुजरते हुए नारदजी ने उनसे प्रश्न किया कि इस यज्ञ का फल किसे दान में दोगे ? वहीं पर स्थित भृगुमहर्षि ने तुरंत कहा कि वे उसी समय जाकर पता लगाकर लौटेंगे, कि त्रिमूर्तियों में से कौन सबसे उत्तम हैं। पहले वे ब्रह्मलोक पहुँचते हैं। जब उन्होंने पाया कि ब्रह्मजी अपनी पत्नी सरस्वती जी के साथ हैं, तो उन्होंने उन्हें शाप दिया कि उनका कभी कोई मंदिर नहीं बनेगा। वहाँ से वे कैलाश में गए। वहाँ पर उन्होंने शिवजी को भी अपनी पत्नी पार्वती के साथ निकटता में पाया। क्रुद्ध होकर उन्होंने शिवजी को शाप दिया कि तुम्हारी केवल लिंगाकार में ही पूजा - अर्चना होगी। वहाँ से चलकर वे वैकुंठ नगरी पहुँचते हैं। वहाँ भी विष्णु जी को महालक्ष्मी जी के साथ अतिसंतोष की स्थिति में देखकर, गुस्से में भृगु महर्षि अपने पैर से विष्णु जी की छाती पर लात मारते हैं। वक्षःस्थल में रहनेवाली महालक्ष्मी जी को जब चोट लगी तो उनको

गुस्सा हो आया । लेकिन, विष्णु जी ने उनको मनाने की बजाय, भृगुमहर्षि के पैरों को अपने हाथों से सहलाते हुए पूछते हैं कि कहीं उनके पैर में चोट तो नहीं आयी । इसी दौरान, विष्णु जी अपने हाथ से उनके तलुवे में स्थित आँख को उखाड फेंककर उनका घंमड चूर - चूर कर देते हैं । भृगुमहर्षि मान लेते हैं कि विष्णु जी ही सभी में उत्तम हैं और वहाँ से लौट जाते हैं । लात खायी लक्ष्मी की उपेक्षा कर लात मारनेवाले भृगु महर्षि के पैरों को सहलानेवाले विष्णु को देखकर महालक्ष्मी जी से रहा नहीं गया । वे विष्णु जी से रूठ जाती है और उनके मना करने पर भी नहीं सुनती और कोल्हापुर चली जाती हैं ।

पत्नी के बिना विष्णु जी से वैकुंठ में अकेले में रहा नहीं गया और वे लक्ष्मी जी को ढूँढते हुए धरती पर पहले से पहुँचा हुआ क्रीड़ापर्वत शेषाचलम् पहुँचते हैं । वहाँ पर वे तपस्या करने में जुट जाते हैं । मानव शरीर धारण करने के कारण, उन्हें भूख लगने लगती है । इस भूख की आँच कोल्हापुर में स्थित लक्ष्मी जी को लगती है । सच्चाई को जानकर ब्रह्मजी को गाय के रूप में तथा शंकर जी को बछडे के रूप में रुपांतरित करके स्वयं गोपिका बनकर चंद्रगिरि के चोलराजा को उन्हें बेच आती है । गाय ने पहले दिन को खूब दूध दिया । अगले दिन, घास चरने जब जंगल भेजी गयी तब वह चरते हुए शेषाचलम् पहाड पर चढ गई और वहाँ पहुँची जहाँ विष्णु जी तपस्या कर रहे थे । तदुपरांत उस बिल में दूध की धारा छोडी और दूध रहित थनों के साथ राजभवन लौटी । राजा की पत्नी धरणी देवी चरवाहे को भला - बुरा कहती है । दूसरे दिन, चरवाह ने गाय पर निगरानी रखकर पाया कि वह किसी बिल पर अपने थन से दूध की धारा छोड रही है । इस पर गुस्सा करते हुए उसने अपने हाथ की कुल्हाडी को फेंक कर मारा । गाय की रक्षा करने बिल

में तपस्या कर रहे विष्णु जी जब बाहर निकलते हैं तो कुल्हाडी की चोट उनके माथे पर लगती है । चरवाहा यह देखकर बेहोश होकर जमीन पर गिर पडता है । चोल राजा को प्रथम ब्रह्मराक्षस बनने का शाप और बाद में आकाशराजू के रूप में जन्म लेने का वर प्राप्त होता है ।

आकाशराजू नारायणवनम् में जन्म लेते हैं । तोंडमान इनके भाई बनकर जन्म लेते हैं । संतान की कामना से जब आकाशराजू यज्ञ करते हैं और जब धरती को यज्ञशाला बनाकर जोतने लगते हैं तो उन्हें सहस्रदल पद्म में पद्मावती जी मिलती हैं । अब यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं है ऐसा सोचकर उस नन्हीं सी बच्ची को घर ले जाकर पालने लगे । वही बच्ची पद्मावती के नाम से उनके यहाँ पली और बडी हुई ।

चोट लगने पर श्रीविष्णु जी चिकित्सा के लिए जड़ी बूटियों की खोज करने लगते हैं तो वराहमूर्ति जी उनको देखकर बिना अनुमति के वराह क्षेत्र में प्रवेश करने के कारण विष्णु जी पर आपत्ति उठाते हैं । आपस में कुछ देर बातचीत के बाद दोनों समझ लेते हैं कि, वे दोनों विष्णु के ही अंश हैं और अपने - अपने कर्तव्य निर्वाह करने इस धरती पर आए हैं । बाद में दोनों के बीच समरसता बढती है । वराहस्वामी जी श्रीनिवास बने विष्णु जी को जब अपने घर ले जाते हैं तब वहाँ पर खाना बना रही वकुला माता (पूर्वजन्म में यशोदा माँ) श्रीनिवास जी को देखती है । अपने बेटे को (कृष्ण) दुबारा पाने पर खुश होती है और उनके चोट की चिकित्सा करती है ।

माँ - बेटे के इस मिलन के बाद पहली पूजा - अर्चना, और प्रथम नैवेद्य, प्रथम दर्शन का अवसर वराहस्वामी जी को मिलेगा, यह वादा करने के बाद, उसके बदले में उनसे थोडा जगह प्राप्त करके वहीं पर

एक आश्रम बनाकर सुखपूर्वक रहने लगे। एक दिन एक पागल हाथी आश्रम में घुस आकर सब कुछ को तहसनहस करने लगता है। श्रीनिवास जी एक जंगली घोडे पर सवार होकर उस हाथी को भगाने लगे। हाथी उन्हें काफी दूर ले जाकर नारायणपुर के उस उद्यानवन में ले जाता है जहाँ पर पद्मावती जी टहल रही थीं। पद्मावती और श्रीनिवास जब एक दूसरे के सामने आते हैं तब वह हाथी गायब हो जाता है। श्रीनिवास जी तथा पद्मावती जी एक दूसरे को देखते हैं। दोनों के बीच प्रेम हुआ। उन्होंने ठान लिया कि वे एक दूसरे से अलग नहीं जी सकते हैं। वकुलमाता के दौत्य कार्य से, नारद मुनि जी के हस्तक्षेप से और स्वयं श्रीनिवास जी द्वारा भविष्यवाणी करनेवाली एरुकम्मा के रूप में आने के कारण परिस्थितियाँ सानुकूल बन जाती हैं, अंत में, कुबेर द्वारा दिया गया 14 करोड के ऋण की मदद से विवाह अत्यंत वैभव के साथ संपन्न होता है। राम अवतार के समय राम जी ने सीता जी को जो वचन दिया था, उसके अनुसार ही पद्मावती रूपी वेदवती से श्रीनिवास ने विवाह किया। ससुराल से ब्याह कर लौटते समय रास्ते में अप्पलाइगुंटा, तोंडवाड एवं श्रीनिवासमंगापुरम् आदि प्रदेशों को पुनीत करते हुए तिरुमल पहुँचे। इस तरह उन्होंने अपनी माँ को दिया हुआ वचन पूरा किया। पत्नी की इच्छा भी पूरी की। कलियुग दैव के रूप में, अर्चामूर्ति बनकर तिरुमल में स्वयंभू के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

यही श्रीवेंकटेश्वर जी का नारायणवनम् के साथ का अनुपम संबंध है। नारायणपुरम में मंदिर के प्रथम निर्माता के रूप में आकाशराजू गिने जाते हैं। अपने दामाद और बेटी को उन्होंने अत्यंत सुन्दर रूप में अलंकृत किया। सदियों से कई शासकों, पल्लव राजा, चोल राजा,

यादव राजा, सालुवरेड्डी राजा एवं कार्वेटीनगरम् राजाओं ने अनेक बार इस मंदिर का जीर्णोद्धार किया और अनगिनत देवतामूर्तियों की प्रतिष्ठा की। आलवार, दशावतार, वरदराजस्वामी, आंडालम्मा (गोदादेवी), कोदण्डराम जी, रंगनायकस्वामी, राजमन्नारस्वामी, प्रयाग माधवराय स्वामी - इस तरह, अनेकानेक देवी - देवताओं को प्रतिष्ठित किया। ऐसा कोई देवता छूट गया ही नहीं जो यहाँ दर्शन नहीं देता हो। लेकिन, यह बताना कठिन है कि किस राजा ने किस देवता को प्रतिष्ठित करवाया। यहाँ की उत्सव मूर्तियों में - कोदंडरामजी अत्यंत सुंदर त्रिभंगी रूप में, एक ओर आंडालम्मा अपने विशेष जूडे में, हनुमानजी अत्यंत विनम्र होकर अंजलीबद्ध रूप में हमें दर्शन देते हैं। मंदिर के प्रमुख शिखर की ऊँचाई 963 फुट पायी गयी है।

मंदिर की पुष्करिणी शहर से दूर है। इसमें प्रतिवर्ष प्लवोत्सव (नौका - उत्सव) आयोजित किया जाता है। इसी तरह प्रतिवर्ष ब्रह्मोत्सव भी मनाये जाते हैं। इनके अलावा, पवित्रोत्सव एवं अन्य मुख्य त्यौहार भी मनाए जाते हैं। इस संपूर्ण मंदिर समुदाय को हम विष्णुनगरी भी मान सकते हैं। नारायणवनम् अपने नाम के अनुरूप अत्यंत शोभायमान एवं पवित्र है। प्रमुख मंदिर के पास ही अवदूत सोरकाय स्वामी का मंदिर स्थित है। अडोस - पडोस प्रांतों में वे काफी प्रसिद्ध हैं। वे ऐच्छिक रूप से यहाँ - वहाँ, जब चाहा तब साक्षात्कार देकर, 200 सालों के लिये भक्त जनाश्रयी बनकर जीवित रहे। प्रकृति पर शासन चलाता था। मद्रास से मेइल रेलगाड़ी में आते समय उन्होंने रेल को सेंट्रल में ही रोक दिया इसलिये कि उनका अनुचर रेल के चलने के समय तक वहाँ पहुँचा नहीं था। अपने अनुचर के रेल में चढ़ने के बाद उन्होंने अपनी छड़ी से इशारा करके रेल को चलाया। इस प्रकार

की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। कौन - सा भक्त किस गांव या प्रांत से आया है - यह बात नारायणवनम् में बैठे - बैठे ही वे बताया करते थे। इनके बारे में कई दिलचस्पी कहानियाँ प्रचार में हैं। अपने भक्तों को 'यह कुत्ता,' 'वह कुत्ता' कहकर संबोधित करता था।

मान्यता के अनुसार इस अवदूत का जन्म एक यादव परिवार में तिरुपति के समीप हुआ था। इनके सिर पर टोपी के आकार में बंधा साफा, घुटनों तक पहनी छोटी - मैली धोती, ललाट और बदन पर श्रीवेंकटेश्वर के तिरुनामम् इन्हें अलग रूप प्रदान करते हैं। कद नाटा और बिखरी - बिखरी चाल, हाथ में भिक्षा का पात्र, पीठ पर अनेक पानी की खाली बोतलें, एक झोली, आस - पास में घूमते कुत्तों का समूह - देखनेवालों को दत्तात्रेय के अवतार लगते थे। एक बार भक्तों ने, इस अवदूत को श्रीवेंकटेश्वर जी के दर्शन कराने के लिए ले गये। लेकिन, वहाँ जाकर यह व्यक्ति अचानक गायब हो गया। मगर, बाहर भक्तों ने भगवान का दर्शन करते समय इन्हें उनकी मूर्ति से बाहर आते हुए देखा। यह थी उनकी महानता। पुत्तूर के धर्मशाला की आधार शिला से संबंधित दस्तावेजों के आधार पर इनकी आयु लगभग 200 वर्ष होने का अनुमान लगाया गया है। सबके सामने उन्होंने दिया जलाया। नारियल फोड़ा। बेंच पर लेट गए। घड़ों से पानी लाकर अपने ऊपर डालने के लिए कहा। अपने भौतिक देह को त्याग दिया। परमात्मा में विलीन हो गया। उनकी अस्थियों पर ही वर्तमान का यह मंदिर बना है। यह इस महानात्मा का महानिर्वाण और उनकी संक्षिप्त कहानी है।

मद्रास एपिग्राफिकल रिपोर्ट (1912) के अनुसार इस कल्याण वेंकटेश्वर जी के मंदिर को ई.के. 1541-42 के आसपास अच्युतदेवरायलु

जी के आंतरंगिक मंत्री विरूपण्णा से निर्माण करवाया गया था। हो सकता है कि जीर्णोद्धार का कार्य था। ई. के. 1622 में कुछ व्यापार संघों ने मंदिर के लिए दान दिया। इसी दौरान चंद्रगिरि श्रीरंगनायकुलु के पुत्र तिरुमलरायल जी ने मंदिर में नित्य दीप - धूप - नैवेद्य के लिए एक गांव को दान में दिया था। जो भी हो, माना जाता है कि इसकी बुनियाद सालुव राजाओं के नरसिंहरायल जी के शासनकाल में ही लगाया गया। योगिमल्लेश्वर स्वामी मंदिर के साथ - साथ यह मंदिर भी तिरुत्तणी सुब्रह्मण्येश्वर स्वामी के मंदिर से अनुबंधित हुआ था। पटास्कर अवार्ड के अंतर्गत तिरुत्तणी तमिलनाडु राज्य के हिस्से में चला गया। सत्यवेडु तालूक आंध्र प्रदेश में आ मिल गया। इस कारण से आंध्र की सरकार ने वर्ष 1960 में इस मंदिर के लिए ट्रस्टियों (न्यासधारियों) को नियमित किया। उन्होंने 1964 में इसका जीणोद्धार करके 1966 में इसका महा संप्रोक्षण का कार्य पूरा किया। वर्ष 1967 में तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने इस मंदिर को अपने अधीन कर लिया।

कहा जाता है कि श्रीनिवास जी के विवाह महोत्सव के दिन पानी की कमी होने पर आरुणी नाम की जडी बूटी से अरुणा नदी की सृष्टि की गयी। आजकल इस नदी पर आरणीयार पुल का निर्माण करके अनेक एकड खेतों में सिंचाई की सुविधा दी गयी है। इससे 3 कि.मी. की दूरी पर, कैलाशनाथकोना (घाटी) झरना स्थित है। यह नगरी के मुक्कु पर्वतों के बीच से होती हुई झरती है। यह एक पर्याटक स्थान भी है।

नारयणवनम् के आस - पास के प्रांतों ने भी प्रसिद्धि पायी। पश्चिम दिशा में नगरि पर्वतों में निर्मित निस्संकुदुर्ग, मध्ययुगीन राजाओं

के लिए, प्रमुखत : नारायणवनम् के शासकों के लिए एक दुर्गम किला रहा था । विजयनगरम् के चक्रवर्तियों में दूसरे वंश के सालुव राजाओं का यह जन्म स्थान रहा है । दक्षिण की ओर स्थित 'नगरि मुक्कु' नाम का पर्वत, ईस्ट इंडिया कंपनी के नौकाओं को मद्रास बंदरगाह दिखाने वाले 'लाइट हाऊस' का कार्य करता था । इस पर लकडियों को जलाकर दिशा निर्देश करते थे । इसी के निकट में कैलाशनाथकोना (घाटी) झरना जन्म लेती हुई सभी के लिए प्रमुखत : चेन्नई वासियों के लिए एक प्रमुख आकर्षण स्थल बनी हुई है । यहाँ कैलाशनाथ का मंदिर है । शिवजी का छोटा मंदिर भी है । उत्तर में सदाशिवघाटी मौजूद है । वहाँ एक छोटा जलपात भी है । महाशिवरात्रि के पर्व दिन पर हजारों की संखया में भक्तों की भीड उमड़ती है ! इसके पूरब में जंगल में श्रीकालहस्ति तक पहुँचने का एक प्राचीन मार्ग है । तोंडमान चक्रवर्ती ने जब नारायणवनम् राज्य का बँटवारा किया था, उस समय श्रीकालहस्ति के समीप के तोंडमनाडु को उन्होंने राजधानी बनाया । संभव है, उस समय उन्होंने इसी मार्ग का उपयोग किया था । रास्ते में श्रीदेवी - भूदेवी सहित नरसिंहस्वामी जी का मंदिर स्थित है । यह सालव नरसिंह जी द्वारा निर्मित मंदिर हो सकता है । इस मंदिर में पूजा - अर्चना नहीं होती है ।

* * *

6. नागलापुरम् - श्री वेदनारायण स्वामी

यह प्रांत नागलापुरम् नाम से जाना जाता है । तिरुपति से 65 कि.मी.की दूरी पर चेन्नई जाने वाले मार्ग पर यह स्थित है । त्रेता युग में जब सोमकासुर नाम का राक्षस वेदों को चुराकर समुद्र में छिप गया तब भगवान विष्णु ने मत्स्यावतार धारण करके उस राक्षस का संहार किया और वेदों की रक्षा की । उस समय इसे अरिगंडापुरम् कहा जाता था । इस नाम का मतलब है शत्रुओं के लिए विपत्ति कारक । एक और मान्यता के अनुसार, जब वैकुंठ में भगवान विष्णु नजर नहीं आए तो चतुर्मुख ब्रह्मजी उन्हें ढूँढते हुए यहाँ आये । श्रीहरि को यहाँ देखा इस कारण से इसका नाम हरिगंडापुरम् यानी स्थान जहाँ श्रीहरि को पाया गया, पड़ा । शातवाहनों का शासन अंत होते - होते दक्षिण का यह प्रांत महाजनपद कहलाने लगा और महासेनापति स्कंदनाग के शासन काल में यह नागराज्य बन गया । भगवान विष्णु ने वेदों को ब्रह्मजी के हवाले किया और ब्रह्मजी उन वेदों के प्रचार - प्रसार में जुट गए । उसी दौरान 'चतुर्वेदी मंगल' नागपुलिदोली का नाम इस प्रांत के लिये पड़ा ।

तीसरे कुलोत्तुंग चोल राजा के शासन काल की आखरी अवधि में राजमल्लदेव यादवराय नाम के सामंत राजा (भुजबल सिद्धरसर) ने नागपुलिदोली में अपने पूर्वज यादवनारायण जी के नाम पर एक मंदिर का निर्माण करवाया था । यह करियमाणिक्य पेरुमाल मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । 13 वीं शताब्दी में निर्मित होने के बाद अज्ञात कारणों से मंदिर की मूल मूर्ति बिलग हो गयी । यह कब हुआ, यह अज्ञात है ।

दशावतार में प्रथम अवतार मत्स्यावतार है । कृत युग में इस अवतार के उद्भूत होने की बात कही गयी है । नागलापुरम् में ही यह

घटित हुआ है। किसी ने वेदोद्धारण करनेवाले वेद नारायण जी के मंदिर को बनवाने की बात नहीं सोची थी। इस कारण से स्वयं भगवान ने ही इस मंदिर का निर्माण किया। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण देवरायलु जी महामखि उत्सवों में भाग लेने कुंभकोणम् जाकर जब लौट रहे थे, उस समय यात्रा - मार्ग में यह गाँव आया। यहाँ पर उन्होंने यादव नारायण स्वामी के दर्शन करना चाहा तो सारी बात सामने आयी।

गाँव का नाम नागुलापुरम् था। उनकी माँ का नाम भी नागुलांबा ही होना एक संयोग की बात थी। वहाँ वेद नारायण जी विराजमान हैं। लेकिन, वहाँ के भगवान की मूर्ति यादव नारायण जी की मानी जाती थी। चूँकि, यह प्रांत समुद्र के समीप में है, इस कारण से अवतार को मानना ही पडेगा। इस वजह से वेद नारायण स्वामी का मंदिर मानकर उसका जीर्णोद्धार क्यों न किया जाए ? फिर तो उन्होंने ठान ही लिया। उन्होंने विचार किया है कि शायद उन्हें यह सुनहरा अवसर प्रदान करने के लिए ही यादवनारायण के रूप में भगवान की मूर्ति में छेद आया होगा।

तुरंत हरिदास जी से मिलने उस प्रांत के अधिकारी पहुँच गए। हरिदास को राजा का प्रस्ताव पसंद आया। उन्होंने राजा से - 'आप के पिताजी ने अपनी पत्नी नागुलांबा के नाम पर हंपी में नागलापुरम् का निर्माण किया था। आप अपनी माँ के नाम पर यहाँ पर नागलापुरम् को विकसित करते हुए मंदिर को अद्‌भुत रूप में निर्माण करवाएँ' - कहकर हरिदास जी ने सलाह दी। यह सब ई.के. 1517 में घटित हुआ था।

राजा के चाहने पर पैसों की क्या ही कमी हो सकती है ? भव्य रूप से मंदिर का निर्माण कार्य आरंभ हुआ। हजारों शिल्पकार इस

काम पर लग गए। चूँकि सारा धन एक साथ नहीं चाहिए था इसी के कारण किसानों को उधार में दिया। जैसे - जैसे वे फसल उगाकर थोडा - थोडा धन वापस लौटाते जाते, मंदिर का काम भी बिना किसी रुकावट के आराम से होने लगा। यानी एक तरफ किसानों को मदद पहुँच रहा था और दूसरी तरफ मंदिर का निर्माण भी जारी था। इस तरह दस वर्ष तक सब कुछ ठीक - ठाक चलता रहा।

बारह एकड़ की भूमि पर पहले सात प्राकारों (परकोरा) के निर्माण के बारे में सोचा गया था। बाद में पाँच एवं अंतत : तीन प्राकार ही पूरे किए गए। पहले प्राकार के लिए सोचा गया कि चारों तरफ चार शिखर बनाएँ जाए। सभी आधे - आधे रूप में बने थे। प्रधान शिखर तीन मंजिलों का बना। अनेक शिलामूर्तियाँ बनीं। अभी अनेक बनना बाकी था। फिर अचानक मंदिर का निर्माण कार्य रुक गया।

कृष्णदेवरायलु जी का एक मात्र बेटे का नाम है - तिरुमलरायलु। बचपन में ही उसकी मृत्यु हो गयी। अनेक उम्मीदों को लेकर उसे पाला था। उम्मीदों पर पानी फिर जाने से कृष्णदेवरायलु जी का मन राज्य शासन से उजड़ गया। उन्होंने राज्य को ही नकार दिया। उस समय चंद्रगिरि पर राज कर रहे अच्युतरायलु को उन्होंने राजकाज संभालने के लिए कहा। इन परिस्थितियों में, मंदिर निर्माण के रुक जाने और किसानों द्वारा ऋण न चुकाने की बात को हरिदास जी के द्वारा उन्हें ज्ञात करवाने पर भी वे चुप रह गए। हाथ में बचे - खुचे धन को भी तिरुमल के श्रीनिवास जी की हुंडी में समर्पित करने की बात कहते हुए उन्होंने हरिदास को पत्र लिख भेजा। जब एक सर्वशक्तिमान राजा ने खुद इस प्रकार से आदेश दिया तो हरिदास भी हिम्मत हार बैठे और शिला मूर्तियों को जहाँ - तहाँ सरका दिया।

प्रथम द्वार पर द्वारपालक के एक तरफ गणेश जी तथा दूसरी ओर विष्णु दुर्गाजी स्थित हैं तो दूसरे द्वार पर एक ही द्वारपालक और तीसरे द्वार पर दो द्वार पालक देखे जा सकते हैं। आखरी द्वार पर एक तरफ मणि नाम का द्वारपालक दूसरी ओर द्वारपालिका संध्या स्थित हैं। गर्भगृह में देवी माँ और वेदनारायण - दोनों विराजमान हैं, इस कारण से हो सकता है, स्त्री - पुरुष द्वारपालकों को रखा गया हो। दूसरे प्राकार के भीतर स्थित मंडपों में सीता और रामचन्द्र जी, लक्ष्मीनरसिंहस्वामी जी एवं वीर हनुमानजी की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ईशान्य दिशा में एक और हनुमानजी भी हैं। यहाँ के गर्भ गृहों में दस वर्ष पूर्व कुछ पंचधातु में बनी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। ये सारी मूर्तियाँ बहुत ही सुंदर हैं। अद्वितीय भी। इन मूर्तियों में बारह आलवारों की मूर्तियाँ, लक्ष्मी नारायण जी की मूर्ति, विश्वक्शेन जी की मूर्ति तथा कुछ दीपस्तंभ शामिल हैं।

करियमानिक्कप्पेरुमाल को दिया गया दान, हरिगंडापुरम् का संपूर्ण आय, किसानों को दिए गए ऋण आदि इस तरह अनेक लाखों का धन व्यय करने पर भी मंदिर निर्माण का कार्य पूरा नहीं हो पाना दुःख का विषय ही है। कहते हैं कि वेदनारायण जी ने रायल जी को स्वप्न आदेश दिए थे। लेकिन हुआ क्या ? विजयनगरम् शिल्प सौंदर्य श्लाघनीय ही है। उनके द्वारा बनायी गयी मूर्तियाँ अद्वितीय एवं अद्‌भुत हैं। शाश्वत भी हैं। वेणुगोपाल स्वामी वीणा - दक्षिणामूर्ति, लक्ष्मी नारायणस्वामी, त्रिमूर्ति (इस मूर्ति में संगीत के सप्त स्वर सुनाई देते हैं), भूवराहमूर्ति, हयग्रीव, त्रिविक्रम . . . . इस तरह अनेकों मूर्तियाँ बनाई गयी हैं। शिला जो भी हो, इन शिल्पकारों के हाथ लगकर मोम

की तरह मुलायम बन जाता और मनचाहे आकार में ढल जाता था। यदि मंदिर पूरा बन गया होता और मूर्तियाँ उनके उचित स्थानों में लग गई होतीं तो इस मंदिर की शोभा जगत प्रख्यात हो गई होगी। ऐसा लगता था मानो यह धरती पर वैकुंठ हो। लेकिन, ऐसा हुआ नहीं। हमें वह सौभाग्य नहीं मिला। कुछ शिलामूर्तियाँ वहीं रह गयीं हैं तो कुछ को तिरुमल के तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के 'म्यूजियम' में पहुँचाये गये। लगता है, दो चार मूर्तियों को तिरुपति के म्यूजियम में भी रखा गया है। दि. 27-04-1967 से यह मंदिर तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के अधीन हो गया है।

राजा कृष्णदेवरायलु जी ने स्वयं इस प्रकार का आदेश दिया तो बेचारे हरिदास जी भी क्या ही करते ? इनमें करियमाणिक्य पेरुमाल की मूर्ति ही टूटी थी। उनके दोनों ओर रुक्मिणि और सत्यभामा, दोनों ही अत्यंत सुंदर रूप में विराजमान हैं। चूँकि, नई मूर्ति तैयार नहीं हो पायी, इस कारण से, उसी समय नवनीत में बनी मूर्ति को वहाँ पर हरिदास द्वारा प्रतिष्ठित की गयी थी। देखने को शंख चक्र हैं, लेकिन चक्र का रूप प्रयोग चक्र है। लगता है इस चक्र ने अभी सोमकासुर को मारा हो।

पूजा के समय गलती से पानी के गिर जाने पर भगवान के चरण भीग गए। भगवान ने स्वयं हटाकर पैरों को मत्स्यावतार का रूप धारण किया। मछली के पैर नहीं होते हैं ना। रुक्मिणी और सत्यभामा, दोनों ही श्रीदेवी तथा भूदेवी में परिवर्तित हो जाती हैं। लेकिन, वेद नारायण जी को तो वेदवल्ली जी की आवश्यकता थी। इस कारण से, उसी समय मंदिर के नैरुति दिशा में एक छोटा मंदिर बनवाकर, उस समय

तक बनकर तैयार रखी हुई वेदवल्ली तायारु की मूर्ति को उसमें प्रतिष्ठित किया था। इसके बाद हरिदास जी ने विराम दिया तो तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने बाद का काम आरंभ किया।

चूँकि, भगवान की मूर्ति नवनीत में बनी है, इस कारण से इनका, तिरुपति के गोविन्दराज स्वामी की तरह तैलाभिषेक ही किया जाता है। अर्थात् तिल के तेल का लेपन। क्योंकि पैर नहीं हैं, इस वजह से सोने में बने चरण बनाकर पहनाए गए हैं। यह सब उस समय देवस्थानम् ने किया था जब उसने इस मंदिर को जीर्णोद्धार के लिए स्वीकार किया था। जिस समय, (तीन मंजिलों का बना) प्रमुख शिखर गिरनेवाला था उस समय देवस्थानम् ने उसे हटाकर उसी जगह पर श्रीदेवी और भूदेवी सहित वेदनारायण स्वामी की मूर्तियों को बनवाया था। इसी तरह सभी तरफ के शिखरों की यथासंभव मरम्मत करवाते हुए मंदिर की हालत में सुधार लाने का प्रयास किया। मंदिर की उत्सव मूर्तियाँ अब तक वैसे श्रीकृष्ण, रुक्मिणी और सत्यभामा ही हैं, फिर भी इन्हें श्रीदेवी, भूदेवी सहित वेदनारायण स्वामी के रूप में ही देखा जाता है। प्राचीरों पर बने शिला लेख कापीराइट पुस्तकों की तरह प्रतीत होती हैं। यदि इनके बारे में लिखा जाए तो वह एक ग्रंथ ही बन जाएगा।

मंदिर का पश्चिम द्वार - सामने गरुडालवार लेकिन हनुमान जी नहीं होते। इस कारण से सूर्य भगवान वर्ष में 5 दिनों के लिए (24 मार्च से 28 मार्च तक) सूर्य की सेवा में लग जाते हैं। शाम के चार - पांच बजे होनेवाली इस सेवा में ध्वजस्तंभ या बलि वेदी बाधा नहीं पहुँचाती। सूर्य की किरणें प्रथम दो दिनों के दौरान चरणों को, बाद में नाभी को, आखरी दो दिनों में मुखारविंद को स्पर्श करते हुए सेवा करने की रीति को देखने

भक्तगण बडी संख्या में यहाँ आते हैं। इसी दौरान नौका उत्सव (तेप्पोत्सव) का आयोजन होता है। पहले दिन, सीताजी समेत श्रीरामचन्द्र जी को, दूसरे दिन से लेकर पांचवें दिन तक श्रीवेदवल्ली समेत श्री वेदनारायण स्वामी जी के लिए इन उत्सवों का आयोजन होता है। तिरुमल की तरह यहाँ पर 9 दिनों के लिए ब्रह्मोत्सवों का आयोजन किया जाता है। लेकिन यहाँ स्वर्ण रथ नहीं होता है। यहाँ पर मत्स्यजयंती भी धूम - धाम से मनाया जाता है।

चोलराजाओं के अंतिम दिनों में यादव राजाओं ने स्वतंत्रता प्राप्त करते हुए वर्तमान के नेल्लूर और चित्तूर जिला के प्रातों पर शासन किया था। इन्होंने, तिरुपति के गोविंदराज मंदिर के पार्थसारथी और आंडालम्मा मंदिर, तिरुचानूर के पद्मावतम्मा मंदिर के बलराम कृष्ण जी के मंदिर, कार्वेटिनगरम् में स्थित (निश्शंकु) वेणुगोपाल स्वामी का मंदिर, नागलापुरम् में बना यादवनारायणस्वामी का 3 जैसे कृष्ण मंदिरों को बनवाते हुए अपने कुलदीपक माने जानेवाले श्रीकृष्ण जी की सेवा करके तर गए। तिरक्कालत्ति देवयादव रायर ने तिरुचानूर को भगवान श्रीवेंकटेश्वर जी को दान दिया तो उनके पोते तिरुवेंकटनाथ यादवरायडु ने तिरुपति शहर को दान में दे दिया। इन मंदिरों में केवल यादवनारायण ही वेदनारायण जी कहलाए।

करिकालचोल के बेटे नेडुमूडि किल्लि ने नागलापुरम् के एक नागराणी से प्रेम किया और जब उससे वह ब्याह नहीं कर सका तो उसे रखेल बनाकर रख लिया। उनका ही पुत्र है - तोंडमान इलयन तिरय्यान, यानी पुराणों में उल्लिखित तोंडमान चक्रवर्ति। यह इतिहास है।

सुरुटुपल्ली : आंध्र और तमिलनाडु राज्यों की सीमा पर नागलापुरम् के समीप, मद्रास (चेन्नई) जानेवाले रास्ते पर सुरुटुपल्ली स्थित है । समुद्र मंथन के समय उत्पन्न हुए हालाहल को शिवजी ने निगला था । लेकिन, पेट में जाने से सर्व लोकों का विनाश हो जायेगा, यह सोचकर उन्होंने उस हालाहल को अपने गले में ही रोक कर रखा । इसके प्रभाव से वे बेहोश हो गए । माँ पार्वती जी ने उनके सिर को गोद में लेकर, उन्हें आराम पहुँचाया । सभी देवता उन्हें देखने आए थे । इस वजह से ही इस प्रांत का नाम पहले 'सुरलपल्ली' पड़ा जो बाद में सुरुटुपल्ली में बदल गया । शिवजी का कंठ विष के प्रभाव से काला हो गया था । इसीलिए वे नीलकंठ भी कहलाते हैं । यहाँ शिवजी को पल्लिकोंडेश्वर स्वामी और 'शयन शिव' जी के नाम से भी पुकारते हैं ।

यह मंदिर अकेला ही ऐसा मंदिर है जहाँ शिवजी लिंगाकार में न रहकर मूर्ति के रूप में दर्शन देते हैं । इतना ही नहीं, पद्मनाभस्वामी की तरह यहाँ शिवजी माँ पार्वती की गोद में सिर रखकर लेटे दिखाई देते हैं । पीडा के कारण आँखें मूँदकर लेटे रहते हैं । दूसरी ओर, माँ पार्वती का चेहरा व्याकुलता से युक्त दिखाई देता है । नाम के लिये 'सर्वमंगला' है, लेकिन ऐसा दिखाई नहीं देती । दक्षिण में पत्थरों से बने मंदिरों का आरंभ ई.के. 7 वीं शताब्दी से ही प्रारंभ हो गया था । इससे पहले मंदिरों को लकडी, चूना तथा ईटों से बनाते थे । यह मंदिर भी इसी प्रकार का है । इसका मतलब यही है कि यह अत्यंत प्राचीन मंदिर है । यहाँ भगवान की मूर्ति भी पत्थर से नहीं बनी है । कहा जाता है कि यहाँ की मूर्ति मिट्टी से बनी है और उस पर रंग पोते गए हैं ।

इसका अर्थ यही है कि पत्थरों से मूर्तियों को बनाने के जमाने से भी पहले की है यहाँ की मूर्ति । शासनों की अनुपलब्धता के कारण समय निर्धारण करना कठिन है । मिट्टी से बनने के बावजूद इस मूर्ति को आज तक कोई क्षति नहीं पहुँची है ।

इस मंदिर के प्रांगण में तीन उप मंदिर भी देखे जा सकते हैं । प्रमुख शिखर के सामने मरकतवल्ली मंदिर दिखाई देगा । ये वल्मीकेश्वर स्वामी के साथ विराजमान हैं । मुख मंडप के स्तंभों पर विविध प्रकार की शिल्प मूर्तियाँ हैं । दक्षिण में अप्पर, संम्बधर, सुन्दर (नयम्नार) वाल्मीकी, पराशरेश्वर, जेष्ठादेवी आदि की मूर्तियाँ बनी हैं । ये सभी चोल राजाओं के समय की मालूम होती हैं । दीवारों पर रंगों से बनाए गए विष्णु, ब्रह्म, दिक्पालक, कालभैरव एवं कुछ महर्षियों के चित्र नीलकंठ जी के बगल में दिखाई देते हैं ।

इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि सुरुटुपल्लीश्वर, अर्थात् गुडिमल्लम परसुरामेश्वरस्वामी, श्री कालहस्तीश्वरस्वामी जी जैसे प्राचीन मालूम होते हैं ।

* * *

7. तरिगोंड - श्री लक्ष्मीनरसिंह स्वामी

दही की हाँडी है मंथाद्रि। एक प्रचलित कहानी के अनुसार रायदुर्ग प्रांत में एक बार जब अकाल पड़ा था, मवेशियों को चारा खिलाने के लिए रामानायनिम्वारु नाम का चरवाह उन्हें 'प्रत्तिमिट्ट पालनूइ मड्डुगु' ले जाता है, तब श्री लक्ष्मीनरसिंह स्वामी उसके स्वप्न में दिखाई देते हैं और उनके लिए मंदिर बनवाने की मांग करते हैं। इससे पूर्व लक्ष्मी नरसम्मा नाम की महिला जब मटकी में दही मथने लगती है तो उसमें शालिग्राम के रूप में लक्ष्मीनरसिंह प्रकट होते हैं। उन्होंने उस शालिग्राम को मंदिर में प्रतिष्ठित करने के लिए कहा। 'तरिकुण्ड' यानी दही की हाँडी में दिखाई देने के कारण उस भगवान का नाम तरिकोण्ड लक्षमीनरसिंह पडा। एक और दिलचस्प कहानी के अनुसार लक्कमांबा नाम की एक ग्वालिन कदरी के लक्ष्मीनरसिंह स्वामी की भक्तिन थी। वह लक्ष्मीनरसिंह स्वामी जी के उत्सव में जाना चाहती थी। उसने जब अपने सास - ससुर से अनुमति माँगी तो उन्होंने उसे हर दिन की तरह 'तरिगोंड' जाकर दही - दूध बेचकर आने के लिए कहा। जब वह दही - दूध की टोकरी को सिर पर रखकर जा रही थी तो अचानक उसे टोकरी का वजन बढा हुआ लगा। उसने टोकरी को जमीन पर उतारकर देखा तो दूध की मटकी से एक काली प्रतिमा दिखाई दी। बाकी का किस्सा तो वही है। भगवान के आदेश के अनुसार (स्वप्नवृत्तांत) गाँव के प्रमुखों ने लक्ष्मीनरसिंह के मंदिर का निर्माण किया और उसी जगह पर धरती से निकाली हुई मूर्ति को इस दूध की मटकी के साथ प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार 'तरिगोंड' क्षेत्र में लक्ष्मीनृसिंह जी प्रकट हुए हैं।

वायल्पाडु (वाल्मीकीपुरम्) से गुर्रम्कोण्डा जानेवाले रास्ते से चार - पांच कि.मी.की दूरी पर है यह 'तरिगोंड'। इसी गांव में तरिगोंड

वेंगमाम्बा (कवयित्री) ने जन्म लेकर इस गांव का नाम प्रख्यात किया है। इस मंदिर में तीन शिलालेख उपलब्ध हैं। पहला शिलालेख ई.के 1559 का है, जिसे विजयनगर के राजा सदाशिवदेव महारायल द्वारा लिखवाया गया था। इसमें राजा की अनुमति, महामंडलेश्वर रामराजदेव महाराय जी की सहमति से जिल्लेल वेंगलराजदेव महाराज मंगली द्वारा दिए जानेवाले कर को कम करने के बारे में लिखा गया है। अर्थात् यह मंदिर सन् 1559 से पहले ही बना था। दूसरा शिलालेख सन् 1846 का है जिसमें यज्ञशाला एवं रसोई अथवा पाकशाला के मंडपों को गुरु भास्कराचार्य के शिष्य यर्रप्पा द्वारा बनवाए जाने का उल्लेख हुआ है। तीसरा शिलालेख सन् 1862 का है। लक्ष्मीनृसिंह स्वामी जी के लिए कृष्णमशेट्टी ने कल्याणमण्डप निर्मित किया था। फिर भी कहीं पर जिसने मंदिर बनवाया उसका नाम उपलब्ध नहीं है। जो भी हो, हम मान सकते हैं कि यह मंदिर 6 वीं सदी में बनवाया गया था, मंदिर निर्माण और बाद में यहाँ के गाँव की स्थापना करने का श्रेय निर्विवाद रूप से रायदुर्ग के रामानयनिम को जाता है। एक अन्य दस्तावेज से पता चलता है कि इनका खानदानी नाम 'तरिगोंड' में परिवर्तित हुआ है। इसके बाद के समय में इन लोगों द्वारा भाकरापेट के समीप चिट्टेचेर्ल गाँव को प्रवास में जाने के कारण एक बार फिर इनका खानदानी नाम बदलकर 'चिट्टेचेर्ल' पडा।

कहाँ रायदुर्ग और कहाँ है तरिगोंड। मवेशियों के संरक्षण में प्रवास के तौर पर यहाँ आकर बसना, रामानायिनिम की पत्नी लक्ष्मी नरसम्मा द्वारा दही मंथन के समय उसमें से शालिग्राम का मिलना, लक्ष्मी नरसम्मा के पति के स्वप्न में नरसिंह स्वामी प्रकट होकर स्वयं की मूर्ति को जमीन से खोद निकालकर अपने लिए मंदिर बनवाने की मांग करना, मंदिर निर्माण के समय बडे पैमाने में धन राशियों का मिलना, मंदिर का सभी

सुविधाओं एवं सीढीदार बावड़ी के साथ पूरा होना, मंदिर में लक्ष्मी नरसिंह स्वामी तथा उनके बगल में शालिग्राम को प्रतिष्ठित करके, फिर तरिगोंड के नाम से गाँव का बनना, इसके साथ यहाँ के भगवान तरिगोंड लक्ष्मीनरसिंह स्वामी जी के रूप में विख्यात होना ये सभी भगवान की लीलायें ही प्रतीत होती हैं ।

भगवान की एक और बडी लीला है, इस गाँव में तरिगोंड वेंगमांबा जैसी विदुषीमणि का जन्म लेना । यह कहना कठिन है कि लक्ष्मीनरसिंह जी की कृपा से उसने इतनी उच्च्य स्थिति पायी है या उसकी ख्याति की वजह से यहाँ के लक्ष्मीनरसिंह जी का नाम विख्यात हुआ है, लेकिन दोनों ही बातें संभव लगती हैं । कानाल परिवार के लोग कर्नूल जिले से आकर यहाँ बस गए । उनमें कानाल कृष्णय्या एवं मंगम्मा दंपत्ति के घर में वेंगमांबा ने अपर मीराबाई बनकर जन्म लिया था । इनके साथ ही भक्ति ने भी जन्म लिया था । वह उसी धुन में रहने लगी । घरवालों ने सोचा कि विवाह करने से इस पागलपन से छुटकारा मिलेगा । यह सोचकर, उन्होंने चित्तूर नगर के समीप नारगुंटापालेम् के इंजेटि वेंकटचलपति नाम के युवक से उसका विवाह किया । उस समय तक वेंगमांबा का मन तिरुमल के भगवान श्रीवेंकटचलपति के प्रति लग चुका था । यह बात उसने अपने पति से भी कह दी । दुर्भाग्यवश, वेंकटचलपति की मृत्यु हो जाती है, लेकिन, वेंगमांबा ने तिरुमलेश श्रीवेंकटेश्वर जी को ही अपना पति मानते हुए सुहागिन के चिह्नों को नहीं निकाला । गाँववालों को यह बात रास नहीं आयी । उन्होंने एक बार उधर से गुजरते हुए पुष्पगिरि के पीठाधिपति जी को उसके पास ले आए । उन्हें देखकर उनको हटने के लिए कहते हुए उसने तख्ते को नमन किया । उसके इस तरह करते ही तख्ता जलकर राख हो गया । यह सब देखकर पीठाधिपति घबराकर वहाँ से भाग खडे हो गए ।

कानाल कृष्णय्या ने मदनपल्ली में रूपावतारम सुब्रह्मण्यम् गुरु के शरण में जाकर अपनी बेटी को समझाने और उसके जीवन को सही रास्ते पर लगाने की मिन्नत की । उन्होंने कृपा दर्शाते हुए वेंगमांबा को मंत्र, तंत्र तथा यंत्र संबंधी रहस्य और योगसूत्रों की शिक्षा देते हुए यह कहा - 'ये सारे तो बुनियाद रूपी विषय हैं - अब उसे खुद को इस पर अपना भवन खडा करना होगा ।' हयग्रीव नृसिंह जी के मंत्रों ने उसे दिशा निर्देश प्रदान किया । उसने काव्य रचना के लिए प्रेरणा भी दी । बीच में योग साधना भी चल रही थी । तरिगोंड नृसिंह जी के मंदिर में स्थित हनुमानजी के पीछे वाली खाली जगह उसकी साधना के लिए अनुकूल था । एक दिन वहाँ के पुजारी ने अनपेक्षित रूप से उसे देखा और डर के मारे हडबडी में उसके बाल पकड कर खींचा । इसके साथ ही तरिगोंड के साथ उसके संबंध समाप्त हो गए । उसने उसी समय उस गाँव को त्याग दिया । भगवान वेंकटचलपति को खोजती हुई जंगलों में भटकने लगी । रास्ते में मोगलिपेंटा हनुमानजी के समक्ष कुछ साधना करने के बाद तिरुमल के वेंकटेश्वर जी के आदेशों पर वेंकटाद्री पहुँचती है । मंदिर के चारों ओर बने रास्तों (माडवीथी) में घूमी । किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया । हथीरामजी मठ के आत्मारामजी महंत ने उसके बारे में जानकारी पाकर वराहस्वामी मंदिर के सामने पत्थर में बने रथ के बगल में उसके लिए एक झोंपड़ी बनवाकर दिया । लेकिन, वह उस झोंपडी में अधिक समय नहीं रही ।

घने जंगल में यात्रा करते हुए वह तुंबुरु - तीर्थ पहुँच गयी । वहाँ पर एक जगह पर बारह वर्षों तक तपस्या करते हुए महायोगिनी बनकर दिव्यशक्तियों के साथ वह तिरुमल लौटी । ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु जी ने उसके दिव्यत्व को पहचानकर अपने घर के पास ही रहने के लिए जगह दी । इस तरह वहाँ पर तरिगोंड वेंगमांबा मठ का उदय हुआ ।

साथ ही अन्नदान की धर्मशाला भी बन गयी। इन चीजों के लिए आवश्यक भूदान, धन - धान्य, व अन्य चीजों का प्रबंध भी होने लगा। अन्नदान का भवन भी बन गया। वराहस्वामी जी के मंदिर के पास उनका अपना एक बगीचा था। आज उसी बगीचे में उनकी समाधि बनी हुई है। इसके अलावा, 'अम्मोरि बावि' (देवी माँ की बावड़ी), जो पापनाशनम जानेवाले रास्ते पर स्थित है - यहाँ पर भी फल - पुष्पों का एक उद्यान हुआ था। उनको मिले कुल दान की संख्या 35 हैं। इसी में वेंगमांबा, नित्य पूजा - अर्चना, नृसिंहस्वामी जयंती आदि को भव्य रूप में आयोजित करती थी। भगवान को अपनी कविताओं, पदों, नाटकों तथा विशेष रूप से यक्षगानों से ही रिझाती थीं इसके साथ नाजुक फूलमालाओं, आत्मीय तौर पर किए जानेवाले पूजा - नमस्कार, अनेक व्यंजनों को नैवेद्य के रूप में चढ़ाकर उनका दिल जीत लेती थी। इसी वजह से उन्हें भगवान के एकांत सेवा के समय मोतियों की आरती देने का शास्वत सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज उनकी बाद की पीढियाँ (वंशज) इसका उपभोग कर रहे हैं।

उनके पास 8 लोग उनकी रचनाओं को लिखने के लिए हमेशा तैयार रहा करते थे। वे उनकी रचनाओं को भोजपत्रों पर लिखकर पूरे देश में प्रचार - प्रसार करते थे। लेकिन, विडम्बना ही कहिए उनकी कोई रचना अपनी नहीं रही। उनकी कुल रचनाएँ 18 से अधिक हैं। हर रचना में, चाहे तरिगोंड लक्ष्मीनृसिंह जी हो या फिर तिरुमल वेंकटेश्वर जी, दोनों अभेदात्मक रूप से एक ही दृष्टिगोचर होते हैं। इसी तरह, उन्होंने तिरुमल के वेंकटचलपति तथा इंजेटि के वेंकटचलपति को भी अभेद ही माना। उनकी महिमाओं तथा रचनाओं के बारे में कितना भी कहा जाए वह कम ही होगा।

तरिगोंड के रहनेवाले एक वणिक प्रमुख (व्यापारी) ने वर्ष 1940 के आसपास वेंगमांबा की मूर्ति बनवाकर उसे लक्ष्मीनृसिंह जी के मंदिर में प्रतिष्ठित करवाया। यहाँ प्रति दिन उनकी पूजा - अर्चना होती है। तिरुमल में उनकी सजीव - समाधि के स्थान पर वहाँ के पाठशाला के छात्र और अध्यापकगण हर शुक्रवार को पूजा - अर्चना करते हैं। तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् हर वर्ष नृसिंहजयंती के दिन उनकी जयंती तथा श्रवण शुद्ध - नवमी के दिन उनकी पुण्यतिथि इन दोनों जगहों पर मनाता है। इस आशय से ही मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा वांग्मय परियोजना का जन्म हुआ है। न सिर्फ उनके नाम पर उत्सव - कार्यक्रम करना है, बल्कि पुस्तक रूप में उनकी रचनाएं, सी. डी, कैसेट रूप में उनके बारे में प्रचार - प्रसार करना इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य है। इसी तरह अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किया है। उनका जन्म सन् 1730 में हुआ और उन्होंने सन् 1817 में महासमाधि प्राप्त की।

चारों तरफ ऊँचे प्राकार से घिरा तीन मंजिलों के शिखरवाले इस मंदिर में हर वर्ष श्रीलक्ष्मीनृसिंह जी के नाम पर 9 दिनों का ब्रह्मोत्सव भव्य रूप से मनाया जाता है।

यह क्षेत्र सत्यप्रमाण के लिए काफी प्रसिद्ध है। इस मंदिर की बलिवेदी के सामने खडे होकर कोई यदि सत्य प्रमाण लेता है तो उसे न्यायालय के साथ - साथ सभी को स्वीकारना ही होता है। लोगों को श्रीलक्ष्मीनृसिंह जी पर इस प्रकार का अपार विश्वास है।

* * *

8. वायल्पाडु (वाल्मीकीपुरम्) - श्री पट्टाभिरामस्वामी

तिरुपति से लगभाग 100 कि.मी.की दूरी पर स्थित है वायल्पाडु । यदि उस ओर जाते हैं तो मदनपल्ली भी इसके पास पड़ता है । मतलब, यह प्रांत सिर्फ एक जंक्शन ही नहीं बल्कि एक समय में कडपा जिले से मिला हुआ तालूक केन्द्र भी है । वर्तमान में यह एक मंडल केन्द्र है ।

पक्षियों का शिकार करनेवालों की संख्या अधिक होने के इस प्रांत को पहले स्थानीय भाषा में बोयलपाडै कहा गया जो बाद में वायल्पाडु में परिवर्तित हो गया । एक और मान्यता के अनुसार 'वाविल पेड' की अधिकता के कारण इस प्रांत को 'वाविल पाडु' नाम से पुकारते थे - जो उत्तरोत्तर वायलपाडु में बदल गया । एक और दंत्य कथा के अनुसार - कहा जाता है कि यहाँ पर वाल्मीकी महर्षि ने तप किया था और यहाँ बने वल्मीक (बिल) से सीता, राम, लक्ष्मण और भरत - शत्रुघ्न की मूर्तियों को उन्होंने पाया था । इन मूर्तियों को जाम्बवंत ने यहाँ प्रतिष्ठित किया है । यह कहानी सर्व मान्य होने के कारण सबने स्वीकार किया । तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने भी इसे स्वीकारते हुए वर्ष 1997 में अपने अधीन में स्वीकार किया । कभी कडपा जिले के कलेक्टर रहे अंग्रेज अधिकारी हार्डिंग्स ने पेट दर्द कम होने के लिए मिन्नत मांगते हुए, उसके कम होने पर मंदिर के एक सुंदर मंडप का निर्माण करवाया था । दिनांक 6-4-2006 को इसमें वाल्मीकी महर्षि की मूर्ति की स्थापना की गयी ।

यहाँ के एक शिलालेख में, महानायंकराचार्य कम्बम तिम्मनायनि वेंकटाद्रि नयनिम् जी द्वारा कंदनवोलु क्षेत्र के वाविलिपाडु जमीनों को इस रघुनाथ मंदिर के लिए दान देने की बात को सन् 1534 वर्ष में अच्युत देव महारायलु की मंजूरी देने के बारे में उल्लेख किया गया है । यहाँ निकट में तिरुपति के रास्ते से सटकर विठलम् नाम का गाँव है । यहाँ विठलेश्वर मंदिर के होने के कारण इस गाँव का नाम भी उसी पर पडा है । इस मंदिर का निर्माण (सन् 1535 में) अच्युत देवरायलु के समय में वेंकटाद्रि नायक ने करवाया था । उन्होंने जमीन भी दान में दिया था । वास्तव में ये ऊपर कहे गए कम्बम तिम्मनायक जी के बेटे ही हैं । इससे पहले यहाँ सालुव नरसिंहरायलु से लिखवाया गया शिला लेख प्राप्त हो चुका था । इस तालूक के देवुलपल्ली में मिला शिलालेख इतिहासकारों के लिए कल्पवृक्ष की भांति महत्वपूर्ण चीज है । सालुव राजाओं के वंशवृक्ष का उल्लेख उसमें हुआ है । सन् 1505 में सालुव नरसिंहरायलु के बेटे इम्मडि नरसिंह जब विजयनगरम् के राजा बने, उसी समय मर्जवाड क्षेत्र (पेनुगोण्ड महाराज्य के अंतर्गत) के देवुलपल्ली के 'माचन बट्टु' नाम के व्यक्ति को दान में प्रदत्त करते हुए इस शिलालेख को बनवाया था ।

''चन्द्रवंश में गुण्ड नाम के व्यक्ति का जन्म हुआ । उसके छ : संतान हुए । उनके नाम हैं - गुण्ड, बोम्मा, मादिराजु, गंटय्या, वीरहोबल, सावित्री, मंगि सलुवमंगी (शायद सावित्री, मंगी बेटियाँ हों? दो लोग अतिरिक्त हैं) । सालुवमंगी ने एक सैनिक से कठारी स्वीकारा । गौता नाम के लडके को जन्म दिया । उसके बेटे का नाम है गुण्ड । इन्होंने मल्लिकाम्बा से विवाह किया । अहोबिल नरसिंह स्वामी भगवान की कृपा से इनके बेटे नरसिंहरायलु का जन्म हुआ । इनको मीसरगण्डा,

कढारिसालुव, धरणीवराह, पंटघ्नंटा निनाद, आइवर गण्डा, आदि नामों से अभिहित किया है । इन्होंने चेर, चोल एवं पांड्यराजु को हराकर मूरुरायरगण्डा का उपनाम कमाया है । उन्होंने श्रीरंगमांम्बा देवी से विवाह किया है । इन्हीं के यहाँ ही हमने जिन दाता का ऊपर उल्लेख किया था.... ''इम्मुडि नरसिंहा का जन्म हुआ था....'' इसके बाद ही दान को ग्रहण करनेवाले माचन बट्टु वंशवृक्ष का उल्लेख हुआ है । लेकिन, यहाँ उसका प्रस्ताव अप्रस्तुत है, इसलिए नहीं दिया है । सालुव नरसिंह रायलु ने तिरुमल के श्रीवेंकटेश्वर की काफी सेवा की है - इस कारण से ही उनके वंशवृक्ष के बारे में भविष्य की पीढियों के लिये प्रस्तुत किया गया ।

इस पट्टाभिराम स्वामी मंदिर में सन् 1833 का एक शिलालेख था । आज वह है या नहीं, इसका कोई पता नहीं । इस मंदिर के लिए पोलेपल्ली वेंकटरामय्या शेट्टी जी (शात वाहन शकम् वर्ष 1755 विजय संवत्सर आश्वयुज शुद्ध दशमी के दिन) ने एक धर्मशाला बनवाया था ।

इस पोलेपल्ली वेंकटरामय्या शेट्टी जी ने एक अच्छे दाता के रूप में वायलपाडु की बहुत सेवा की थी । वर्ष 1895 में उन्होंने वायलपाडु में एक प्राथमिकोन्नत पाठशाला की शुरुआत करवाई । इसे वर्ष 1914 में थियोसाफिकल ट्रस्ट को सौंप दिया । वर्ष 1915 में चित्तूर जिला - बोर्ड ने इस स्कूल को अपनाते हुए इसे माध्यमिक पाठशाला के रूप में परिवर्तित किया । मद्रास सरकार की अनुमति लेते हुए इस स्कूल को पी.वी.सी. मिडिल स्कूल नाम दिया । वर्तमान में इसका कालेज में परिणत होने के बाद भी इसका नाम बदला नहीं गया है । शेट्टी जी की सेवाओं के लिए दि. 1-1-1903 में 7 वें एडवर्ड राजा ने तथा दि.

12-12-1911 में 5 वें जार्ज राजा ने इस स्कूल को सम्मान पत्र दिए थे । दूसरे सम्मान पत्र को दिल्ली दरबार में कोरोनेशन के द्वारा दिया गया । दि. 24-8-1937 में शेट्टी जी के चित्र को इस पाठशाला में उद्घाटित किया गया । महान लोग - लोक कल्याण के लिए पैदा होते हैं ।

अब यदि पट्टाभिरामस्वामी मंदिर के बारे में कहें - तो यह गाँव के बीचों बीच बना हुआ है । इसके चारों ओर सौ ढेरों वाले पर्वत श्रृंखला स्थित है । इस पर्वत श्रृंखला को शत श्रृंखला पर्वत नाम से जाना जाता है और यहाँ पर वाल्मीकी महर्षि का मंदिर भी हुआ था । बहुदानदी इस गाँव की परिक्रमा करती हुई बहती है । इस प्रांत पर पल्लव, चोल, बाण, वैदुंब, होयस्सल तथा विजयनगर राजाओं ने शासन किया था । बाद में कडपा, गुर्रमकोण्डा तथा मैसूर नवाबों ने इस पर राज किया ।

मंदिर में प्रमुख मूल मूर्तियों के विराजमान होने के कारण, हनुमान जी बाहर प्रतिष्ठित किए गए । सीता जी के दाईं ओर दिखाई देते हैं । चार मंजिल का प्रमुख शिखर मंदिर पर देखा जा सकता है । गर्भगृह पर कलश की जगह सुदर्शन चक्र को देखा जा सकता है ।

मंदिर में तीन झूलों वाले मंडप हैं । मंदिर, ऊंचे प्राचीर से घिरा है । यहाँ भगवान के लिए 9 दिनों का ब्रह्मोत्सव आयोजित होता है । तीन दिनों का राज्याभिषेक उत्सव (पट्टाभिषेकम्) और चार दिनों का पवित्रोत्सव मनाए जाते हैं ।

* * *

9. तोंडवाड - श्री अगस्त्येश्वर स्वामी

कैलाश में शिव - पार्वती का विवाह हो रहा था। समस्त देवता वहाँ पर एकत्रित हुए। उनके भार से पृथ्वी उस तरफ झुक गयी थी। खतरे को पहचानकर शिवजी ने अगस्त्य महामुनि को बुलवाया और उनसे दक्षिण की ओर जाकर पृथ्वी की समतुल्यता बनाये रखने को कहा। सब एक तरफ - और अगस्त्य महर्षि एक तरफ। भगवान का विवाह देख नहीं पाने का मलाल महर्षि के मन में रह गया। इसे पहचानते हुए, शिवजी ने उनसे कहा कि वे जिस जगह होंगे उन्हें वहीं पर विवाह देखने का अवसर मिल जाएगा। तुरंत अगस्त्य मुनि दक्षिण की ओर चल पड़े।

रास्ते में विन्ध्या पर्वत आडे आयी। उस समय तक लोग परेशान थे कि यह पर्वत सूर्य और चन्द्रमा के गमन में भी बाधा पहुँचा रहा है। अगस्त्य महर्षि ने उस पर्वत से कहा कि वे दक्षिण की ओर जा रहे हैं - और आदेश दिया कि उनके लौटने तक वह उसी तरह दबा रहे, जिस तरह वह अभी है। लेकिन, इसके बाद अगस्त्य उत्तर में वापस गए ही नहीं। इस तरह से, विन्ध्या पर्वत का गर्वभंग हो गया। दक्षिण में विन्ध्या पहुँचनेवाले अगस्त्य महर्षि ने पूर्वाद्रि और सह्याद्रि पर्वत जहाँ मिलते हों उस जगह से शिवजी के परिणय का वीक्षण किया। विवाह को देखने के आनंद में वे झूमते हुए वहाँ के पर्वतों पर घूमने लगे। इस कारण से इन पर्वतों को अगस्त्य पर्वत नाम मिल गया। जब इस तरह वे यहाँ के मल्लेपल्ली पर्वतों पर विचरण कर रहे थे, उस समय उन्होंने देखा कि वहाँ पर पानी की बहुत कमी थी और स्नानादि के लिए भी दिक्कत होती थी। उसी समय उन्होंने आदिनेपल्ली नाम के प्रांत में एक

टीले पर बैठकर गंगा की प्रार्थना की। गंगाजी प्रकट होकर उनकी इच्छा के अनुरूप एक नदी के रूप में स्वर्ण किरणों को बिखेरती हुई धरती पर उतर आयी। आदिनेपल्ली के निकट के उस टीले को अगस्त्य पर्वत के नाम से और स्वर्णिम किरणों के साथ धरती पर उतरनेवाली उस नदी को सुवर्णमुखरी नाम से जाना जाता है।

यह नदी कहीं पूरब की दिशा में बहती है तो कुछ जगहों पर उत्तर की दिशा में (इस तरह यह चंन्द्रगिरि पर्वतों को छूती और शेषाचल पर्वतों की चरण स्पर्श करती हुई, तोंडवाड अगस्त्याश्रम को पावन करने, अलमेलुमंगम्मा जी को तिरुचानूर में आनंदित करने और गुडिमल्लम परमेश्वर का हालचाल पूछने, श्रीकालहस्ति को दक्षिण काशी का दर्जा दिलवाने के बाद नायडुपेट को पार करते हुए समुद्र की ओर दौड लगाती है। नदी की इस यात्रा में सबसे प्रथम पडाव ही है यह अगस्त्येश्वर क्षेत्र। अगस्त्य महर्षि ने पहले उन सभी प्रांतों में विचरण किया जहाँ जहाँ सुवर्णमुखरी नदी बहती है। इसके पश्चात्, दक्षिणकाशी मानी जानेवाली श्री कालहस्ती में वहाँ के कालहस्तीश्वर जी के दर्शन करने के बाद त्रिवेणी संगम कहलानेवाले तोंडवाड में आश्रम की स्थापना की।

चन्द्रगिरि के आगे वाले प्रांत में स्वर्णमुखी में भीमा नदी का मेल होता है। तोंडवाड के आगे श्रीनिवासमंगापुरम् के पास विकल्य (कल्याणी) नदी इसमें आकर मिलती है। इस कारण से इसे त्रिवेणी संगम कहा जाता है। एक समय था, जब नदी के दोनों ओर मोगरे (तेलुगु में मोगली) की झाडियाँ हुआ करती थीं। उस समय यह प्रांत मोगिलेरु नाम से जाना जाता था। एक बार जब अगस्त्य महर्षि इस नदी में स्नान कर रहे थे, उन्हें एक शिवलिंग मिला। उन्होंने उस शिवलिंग

को उसी तट पर प्राण प्रतिष्ठा करते हुए - उसे श्री अगस्त्येश्वर स्वामी का नाम दिया। इसके साथ वहाँ पर माँ आनंदवल्ली जी का भी उदय हुआ। यहाँ पर विघ्नेश्वर तथा वल्लीदेवसेना समेत कार्तिकेय (कुमारस्वामी) द्वारपालक के रूप में विराजमान हैं।

नारायणवनम् में पद्मावती जी से विवाह बन्धन में बंधने वाले श्रीनिवास जी - वधू - वर के रूप में निकलकर पहले अप्पलाइगुंट से होते हुए इस अगस्त्येश्वर स्वामी क्षेत्र पहुँचते हुए अगस्त्य महर्षि के दर्शन करते हैं। श्रीनिवास जी तिरुमल जाते हुए रास्ते में अपने दर्शन करने की बात जानकर, श्रीनिवास जी को हल्दी में लिप्त कपड़ों में तिरुमल पर्वत पर 6 महीनों तक नहीं चढ़ने की बात कहते हैं उन्हें और छः महीनों के लिए अपने यहाँ ही रुके रहने की राय देते हैं। चूँकि ससुराल लौटना भी उचित नहीं था, इस कारण से श्रीनिवास जी उनकी बात मानकर वहीं रह गए। नव दंपत्ति हर दिन पूजापाठ के समय तक आश्रम में रहते थे और बाकी समय को निकट के श्रीनिवासमंगपुरम् में गुजारते थे।

छः महीने बीत गए। तिरुमल में छोटे मामा तोंडमान राजा ने श्रीनिवास जी के लिए आवास का निर्माण करवाया। अपने प्रवास की स्मृति में स्वर्णमुखी नदी के एक पत्थर पर 'विष्णु चरण' अंकित करते हुए श्रीनिवास जी ने अगस्त्य महामुनि की अनुमति प्राप्त की और श्रीनिवासमंगापुरम् और श्रीवारि मेट्टु मार्ग से होते हुए तिरुमल पहुँचकर श्री वेंकटेश्वर जी के रूप में मंदिर में प्रवेश किया। पद्मावती देवी जी ने उनका अनुसरण किया। इस कारण से ही, तोंडवाड क्षेत्र का नाम अगस्त्य पूजित 'विष्णु चरण' (विष्णु - पादम्) भी कहा गया है। श्री वेंकटेश्वर सहस्र नामावली में, 826 वाँ नाम 'सुवर्ण मुखरी तीर शिवध्याता

पदाम्बुजाय नमः' - इस प्रकरण की याद दिलाती है। इसी वजह से इस क्षेत्र को 'रुद्रपादाल मुक्कोटि' का नाम भी मिला।

स्वर्णमुखी अत्यंत पवित्र नदी मानी जाती है। यही कारण है कि दुनिया के प्रसिद्ध पवित्रक्षेत्र इसके तट पर बसे हैं। माँ पद्मावती देवी ने जिस पद्मसरोवर में जन्म लिया था, वह इसी नदी के तट पर स्थित है। स्वयं देवी माँ भी यहीं पर विराजमान हैं। इनके समीप ही योगिमल्लवरम में शिव - वैष्णव के भेद को भुलाते हुए पराशरेश्वर स्वामी भी बसे हैं। गुडिमल्लम् के भगवान परशुरामेश्वर स्वामी तो दुनिया भर में प्रसिद्ध शिवलिंग आकार है। श्री कालहस्ती का वायुलिंग पंचभूत लिंगों में एक होते हुए आदिशेषु के साँसों का प्रतीक माना जाता है। मान्यता है कि जो कोई इस सुवर्णमुखरी नदी में स्नान करता है, श्रीवेंकटेश्वर जी उनकी सभी मनोकामनाएँ पूरी कर देते हैं। श्रीवेंकटेश्वर अष्टोत्तर शतनामावली के 105 वें नाम के अंतर्गत 'सुवर्ण मुखरी स्नात मनुजाभीष्टदायिने' कहना इसी का प्रतीक है।

इस स्वर्णमुखी को धरती पर लानेवाले अगस्त्य महर्षि एक अपर भगीरथ ही नहीं, एक महान आत्मा, बहुजन हितैषी तथा परोपकारी हैं। त्रेतायुग में राम - रावण युद्ध के दौरान, उन्होंने राम जी को 'आदित्यहृदयम्' का उपदेश दिया और उसका पठन करते हुए रावण का संहार करने को कहा। द्वापर युग में उन्होंने पांडव का पक्ष लेते हुए उनका हित चाहा। वातापी नाम के राक्षस को 'वातापी जीर्णम्' कहते हुए, उसे हजम कर लिया था। कलियुग के भगवान श्रीवेंकटेश्वर जी की भी भलाई चाहते हुए उन्हें अपने आश्रम में ठहराया था। नारायणवनम् राज्य के लिए जब तोंडमान तथा वसुदास झगड़ा कर रहे थे तब उनके

बीच अगस्त्य महर्षि ने ही बीच बचाव करके राज्य को दो भागों में बाँटने के लिए श्रीनिवास जी को सलाह दिया तथा युद्ध को रोक दिया ।

लगता है, इन सभी बातों को जानते हुए ही चोल राजाओं ने मंदिर का निर्माण करवाया था। इसका कारण है - इस मंदिर का काफी समय तक श्रीकालहस्ती मंदिर के साथ अनुसंधान करके काम करना। सौ वर्ष पूर्व, नाटुकोटि शेट्टियार लोगों ने जब श्रीकालहस्ती मंदिर का जीर्णोद्धार किया था उसी समय इस मंदिर का भी जीर्णोद्धार किया और सन् 1909 में इसे स्थानीय मोगिलि रेड्डी वंशजों को मंदिर का निर्वाह कार्य सौंप दिया। उस समय से अब तक उन्हीं मोगिलि रेड्डी वंशजों की देख रेख में मंदिर का निर्वाहकार्य जारी है। आखरीबार, मंदिर का जीर्णोद्धार वर्ष 1981 में किया गया था। उसी समय, भद्राचल राम जी के प्रतिबिम्बों की तरह मूल मूर्तियों को बनवाकर यहाँ पर राम मंदिर का निर्माण और प्रतिष्ठापन किया गया था ।

यहाँ पर अश्वत्थ वृक्ष के साथ एक नीम वृक्ष, इमली का वृक्ष, बिल्व वृक्ष तथा ऊडग वृक्ष (एक औषधि वृक्ष) का एक साथ प्रकट होना एक बडी विशेषता है। तिरुपति से 10 की.मी.की दूरी पर प्रमुख रास्ते से सटकर स्थित इस पवित्र क्षेत्र के लिए मंदिर की बसों के अलावा, पर्याटन विभाग की बसें भी आती जाती हैं ।

* * *

10. श्रीकालहस्ति - श्रीकालहस्तीश्वर स्वामी

श्री का मतलब मकड़ी, काल होता है सर्प यानी साँप और हस्ति का अर्थ है हाथी। एक बार एक मकड़ी शिवलिंग के ऊपर जाल बुनती है। सर्प उन जालों को साफ करते हुए शिवलिंग की पूजा मणियों से करता है। हाथी सूँड में पानी भरकर लाते हुए शिवलिंग पर अभिषेक करता है तो सारी मणियाँ झड जाती हैं। पूजा के इस सिलसिले में मकडी मर जाती है। साँप क्रोध में हाथी के सूँड में घुस जाता है। हाथी दर्द के मारे अपने सूँड को एक पत्थर पर मारता है - जिससे हाथी भी मर जाता है और साँप भी कुचल कर मर जाता है। चूँकि इन तीन प्राणियों ने शिव पूजा में अपने प्राण त्याग दिये, इस कारण से इन्हें मुक्ति मिल गयी। इन्हीं के नाम से इस पवित्र क्षेत्र का नाम भी 'श्रीकालहस्ति' पड़ा। एक और रोचक कहानी भी इस क्षेत्र के बारे में प्रचलित है। कन्नप्पा नाम का एक शिकारी, अपने मुँह में पानी भर कर लाता था और इस शिवलिंग का प्रति दिन अभिषेक किया करता था और नैवेद्य में सुअर का माँस चढाता था। इसी में वह अत्यंत आनंदित होता था। एक बार उसके भक्ति की परीक्षा लेने की सोच में श्रीकालहस्तीश्वर जी ने अपने आँखों में रक्तस्राव का रोग लगा लिया। कन्नप्पा इस पर दुःखी होकर अपनी आखों को निकाल कर शिवलिंग पर लगा देता है। इसके साथ ही वह भक्त कन्नप्पा के नाम से अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। जंगमय्या, नत्कीर बहुत सारी देवदासियाँ आदि भक्त इस कतार में आनेवाले महाभक्त हैं। श्रीकृष्णदेवरायलु जी के दरबार के अष्टदिग्गज कवियों में से एक - धूर्जटी कवि इसी प्रांत के हैं। इन्होंने 'श्रीकालहस्ति माहात्म्यम' और 'श्रीकालहस्तीश्वर शतक' की रचना करके ख्याति पायी है ।

तिरुपति से 35 कि.मी.की दूरी पर स्वर्णमुखी नदी के तट पर बसा, दक्षिण काशी के नाम से प्रसिद्ध यह क्षेत्र काफी पुराना है। राहू - केतु के लिए शांति पूजा - अर्चना के लिए भी यह क्षेत्र प्रसिद्ध है। इनके साथ - साथ शनि देवता भी यहाँ विराजमान होकर लोगों द्वारा पूजित हैं। पल्लव राजाओं ने इस मंदिर में नटराज के नाम पर गुहा मंडप बनवाया है, जिस पर अनेक शिल्प बनाए गए हैं। कुछ प्रमुख शिला मूर्तियाँ, पंचमुखेश्वर शिवलिंग (कुछ इसे ब्रह्म मानते हैं), नटराज, पार्वती परिणय, कुमारस्वामी, नृत्य गणपति, आलिंगन मूर्ति, भिक्षाटन मूर्ति आदि महाबलिपुरम् में पल्लव राजाओं द्वारा ही बनाई गयीं मूर्तियों की याद दिलाती हैं।

बाकी मंदिर का निर्माण चोल राजाओं द्वारा ही किया गया। ई.के. 1000 वर्ष से ई.के. 1200 तक लगभग 200 वर्षों तक प्रमुख मंदिर का निर्माण होता रहा था। यहाँ का नीलकंठेश्वर जी का मंदिर (नीलगिरीश्वरम्) लगभग सन् 1150 में प्रथम कुलोत्तुंग चोल के समय में निर्माण करवाया है तो सन् 1222-23 में तृतीय राजराज चोल ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार किया। मणिकंठेश्वर मंदिर को राज राज चोल ने यदि ईंट में बनवाया है तो वीर राजेन्द्र चोल (कुलोत्तुंग - 3) ने ई.के 1188-89 में इसे पत्थर में जीर्णोद्धार करवाया। इन्होंने काशीविश्वेश्वर जी का मंदिर भी बनवाया था। यादव राजाओं ने इस मंदिर के लिए कई बार दान दिया है। इन्होंने नेल्लूर क्षेत्र और चित्तूर के पूर्व प्रांत पर शासन किया था। श्रीकृष्णदेवरायलु जी ने यहाँ पर बडा शिखर तथा सौ स्तभोंवाला मंडप बनवाया है। पूरब की विजय यात्रा में सफलता की स्मृति में बनाया गया यह शिखर ढह गया है। एक बार पुनः इसे खडा करने के प्रयास जारी हैं।

इस मंदिर में राजराज चोल की रानी नंबीराट्टियार चोलमदेवियार की धातु में बनी मूर्ति उपलब्ध है। अति सुन्दर सुन्दरनायनार, कन्नप्पनायनार एवं 63 अन्य नायनार के धातु में बनी मूर्तियाँ, इनके अतिरिक्त केट्टन आदित्तन (पुरुष) कलियान्वै (स्त्री) मूर्तियाँ एवं अनेक उत्सव मूर्तियाँ इस मंदिर की शोभा बढ़ा रही हैं। यहाँ की देवी माँ ज्ञान - प्रसूनांबा भक्तों को ज्ञान प्रदान करती हैं। मंदिर में प्रवेश करते ही सामने दक्षिणामूर्ति जी की मूर्ति हमको स्वागत देती है। दक्षिण शिखर के दोनों ओर अक्कन्ना और मादन्ना द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिंग सुंदर रूप से स्थापित हैं। शिला लेखों में श्रीकालहस्ति का नाम मुम्मडि चोलपुरम् के रूप में अंकित है। इसको राजेन्द्र चोल मण्डल, तिरुवेंकट कोट्टम अरुरनाडु के अधीनस्थ प्रांत के रूप में शिलालेखों में बताया गया है।

* * *

11. तोंडमनाडु - श्री पेरुमाल स्वामी

आकाशराजू तोंडमान ने नारायणवनम् राज्य के बंटवारे में आधा हिस्सा लेते हुए अपनी राजधानी को यहाँ पर स्थापित किया था। इस कारण से इसे तोंडमनाडै नाम से, बाद में तोंडमंडलम् के रूप में पुकारा गया। विजयनगर राजाओं के समय तक यह प्रांत इसी नाम से प्रसिद्ध रहा। श्रीवेंकटाचलमाहात्म्यम् (महिमा गान) के अनुसार तोंडमान चक्रवर्ती तिरुमल के श्रीवेंकटेश्वर जी के परम भक्त थे। नित्यप्रति वे भगवान के दर्शन के लिए पहुँच जाते थे। इसके अतिरिक प्रति दिन उनकी पूजा - अर्चना किया करते थे और भगवान से वात्सल्यपूर्वक वार्तालाप भी करते थे। जब चाहता तब तिरुमल पहुँच जाता। एक बार भगवान के चरणों पर मिट्टी से बने पुष्पों को स्थित देखकर राजा ने उनके बारे में पूछा तो भगवान ने उत्तर दिया कि कुरुवनंबी नाम के कुम्हार द्वारा घडे बनाते समय हाथ में लगी मिट्टी से फूलों को बनाकर पूजा करने के कारण वे फूल, चरणों के पास आ गिरे हैं। एक अन्य घटना के अंतर्गत, एक ब्राह्मण काशी - यात्रा पर जाते हुए अपने परिवार को तोंडमान राजा के हवाले करते हैं। लौटकर उसने जब अपने परिवार को वापस मांगा तब तक उनके बारे में भूल चुके राजा ने उनको मरा हुआ पाते हैं। काफी दुःखी होकर तोंड़मान राजा, भगवान से उस परिवार को पुनर्जीवित करने के लिये प्रार्थना करता है। बेबस होकर वेंकटेश्वर जी ब्राह्मण की पत्नी और संतान को पुनर्जीवित करता है। नाराज होकर श्रीनिवास, राजा से बात करना बंद कर देता है।

तोंडमान राजा के पास अब कोई चारा न रह गया, तब अपने ही प्रांत में श्रीनिवास जी का मंदिर बनवाकर वहीं पूजा - अर्चना करते हुए

अपना समय आजीवन यहीं पर बिताया। एक और किंवदन्ति के अनुसार, श्रीनिवास जी ने तोंडमान राजा से ''तुम्हे आगे से मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है, मैं ही तुम्हारे पास विरजा नदी के साथ आऊँगा'' कहा और उसके दूसरे दिन ही उनके घर में मूर्ति बनकर प्रकट हुए। घर के बाहर देखा तो पवित्र विरजा नदी बहती हुई तालाब की ओर जाती दिखाई पडी। तोंडमान जी की मनोकामना पूरी हुई। उनके अपने घर में ही भगवान ने जन्म लिया। घर में जन्म लेने के कारण उनका नाम 'वीट्ट पिरुन्द पेरुमाल' (यानी घर में जन्म लेने वाला भगवान) रखा गया। विरजा नदी अंतर्वाहिनी होती हुई तोंडमनाटि तालाब में जा मिलने लगी।

घर के बीचों - बीच प्रकट होने वाले भगवान वहीं सदा के लिए रह गए। ये पेरुमाल (भगवान) जी आसन में बैठे हुए, श्रीदेवी तथा भूदेवी के साथ दर्शन देते हैं। वरदहस्त मुद्रा में गंभीर लगते हैं। तोंडमान जी ने उनके लिए मंदिर का निर्माण करवाते हुए उसके चारों ओर एक किला भी बनवाया। इसी में तोंडमनाटि तालाब भी स्थित है। इसी प्रांगण में आदित्येश्वर जी का मंदिर भी स्थित है। बाकी सभी चीजें गायब हो गयी हैं। वर्तमान में यह मंदिर तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के अधीन हो गया है।

इस मंदिर शिखर का विमान भी तिरुमल के आनंदनिलय विमान की तरह ही दिखाई देता। मुखमण्डप में कुछ वैष्णव शिल्प देखे जा सकते हैं। यदि इस मंदिर का जीर्णोद्धार होता है तो श्रीवेंकटेश पेरुमाल अत्यंत प्रसन्न हो जायेंगे।

यहाँ स्थित अन्य प्राचीन मंदिरों में आदित्येश्वर या कोदण्डरामेश्वर मंदिर देखने को मिलता है। परांतक प्रथम चोल ने अपने पिता आदित्य

प्रथम की स्मृति में इस मंदिर को बनवाया। आदित्य प्रथम की मृत्यु इस जगह पर युद्ध में (पल्लवों से?) हुई थी और उनकी अस्थियों पर ई.के 940 - 41 में यह मंदिर बनवाया गया था।

राज राज चोल जी के समय (ई. के 1005) गट्टिदेवराय पेरुमाल ने मंदिर के लिए किदरन कोण्डा चोलपुरम् नामक गाँव को दान में दिया था। मधुरई कोण्डा कोप्परि केसरी ने अपने 34 वीं शासन वर्ष में (सन् 1018 - 1052?) कोदण्डरामेश्वर के 7 दिनों के उत्सव के आयोजन के लिए तोंडमान पेर्रुर ने सभा के लोगों को, नगर पालकों के लिए 105 कलंजु सोना दान में दिया था। तिक्कयदेव महारस ने ई.के 126 में तोंडमनाटि तालाब के लिए सीढियों का निर्माण करवाया था।

* * *

12. काशीबुग्गा (नगरि) - श्री काशीविश्वेश्वर स्वामी

अहल्या शाप की घटना से विचलित होकर जब गौतम महर्षि मन की शांति के लिए देशाटन करते हुए कुशस्थलि नदी के तट पर पहुँचे, तब उन्होंने वहाँ के मनमोहक प्रकृति को देखकर मन ही मन सोचा कि "यह प्रांत काशी जैसा प्रतीत हो रहा है। यदि यहाँ शिवजी भी होंगे तो कितना अच्छा होता।" इस पर उन्होंने शिवजी की प्रार्थना की और जब वे प्रकट हुए तब उन्होंने उनसे वहाँ बसने का अनुरोध किया। ईश्वर ने उनकी बात मान ली। इस वजह से यह दक्षिण काशी कहलाया। पूरब के इन पर्वतों में यदि गंगा जी भी प्रवाहित होंगी तो अच्छा होगा - यह सोचकर उन्होंने गंगा जी की प्रार्थना की। वहाँ गंगा जी का अवतरण भी हो गया। यहाँ गंगा तीन भागों में विभजित होकर कुशस्थलि नदी में विलीन हो जाती है। इन धारा - रेखाओं के नाम हैं - काशी पाया (पाया-धारा) रामेश्वरम पाया और कुशस्थलि पाया। नदी के इन तीनों धारा रेखाओं के लिए ईंटों से नहर बनाए गए हैं। वर्तमान में इन नहरों में पानी प्रवाहमान नहीं है, - फिर भी, ये नहरें उसी तरह बनी हुई हैं। वर्ष 1932 में बाढ के कारण, यहाँ का सब कुछ बह गया। उस समय कांचीपुरम् के बडे स्वामी श्री चंद्रशेखरेन्द्र सरस्वती जी ने इस मंदिर का पुनर्निर्माण करवाकर यहाँ पूजा कार्यक्रम यथावत् चलते रहने का प्रबंध किया। यहाँ पर उनके 'कंची मठ' की शाखा भी बनी है।

मंदिर का मुख मंडप शिल्प कौशल और संपदा से शोभायमान रहता है। एक ओर, काशी विश्वेश्वर जी गौतम महर्षि के आगे प्रकट

होकर वहाँ बसने की घटना को उकेरा गया है तो दूसरी ओर गौतम महर्षि द्वारा काशी विश्वनाथ जी की प्रतिष्ठा करते हुए उनकी पूजा करने की झांकी को शिल्प में उतारा गया है। शिल्प विधान में पल्लव तथा चोल शिल्प कला कौशल को अपनाया गया है।

तिरुपति से लगभग 56 कि.मी.की दूरी पर स्थित इस मंदिर के अनेक नाम प्रसिद्ध थे। यहाँ का क्षेत्रपाल, कालभैरव है, इसी कारण से कालभैरव क्षेत्र के नाम से भी यह जाना जाता है। गौतम महर्षि द्वारा स्थापित किए जाने के कारण गौतम क्षेत्र, पंचलिंगों की यहाँ पर प्रतिष्ठा होने की वजह से पंचमुख क्षेत्र, बुग्ग मंदिर तथा काशी विश्वेश्वर जी का इस प्रकार दक्षिण में पधारने के कारण दक्षिण काशी नाम से भी प्रसिद्ध है।

मंदिर अनेक छोटे मंड़पों से आवृत्त है। इनमें दोंटि गणेश जी, सद्योजात मूर्ति, वामदेव मूर्ति, अघोर मूर्ति, तत्पुरुष मूर्ति (पंचलिंग), वल्ली देवसेना समेत सुब्रह्मण्येश्वर स्वामी, काशी विशालाक्षी, वीरभद्र, महिषासुर मर्दिनी, विष्णु दुर्गा (हाथ में शंख और चक्र धारण किए हुए) आदि मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई हैं। ऊँचे प्राचीर (प्राकार) से युक्त इस मंदिर के पूरब दिशा में प्रवेश द्वार है। तीन मंजिलोंवाले प्रधान शिखर को पार करते ही ध्वजस्तंभ तथा बलिवेदि के दर्शन होते हैं। बलिवेदि के बगल में दक्षिण दिशा की ओर प्रवेश द्वार से युक्त एक छोटे मंदिर में क्षेत्रपाल कालभैरव जी विराजमान मिलेंगे। उनका वाहन कुकुर (कुत्ता) उनके सामने स्थित है।

शिव मंदिर के उत्तर में प्रयागमाधवराहस्वामी जी श्रीदेवी तथा भूदेवी समेत प्रतिष्ठित हैं। इसी नाम से नारायणवनम् में भी भगवान

विराजमान हैं। हो सकता है कि ये कार्वेटिनगरम् राजाओं के प्रिय देवता रहे हों ? इस मंदिर के प्रथम निर्माता संभवतः चोल राजा रहे होंगे। लगता है उनके बाद यादव, उनके पश्चात् कार्वेटिनगरम् के राजाओं ने परम्परागत रूप से मंदिर के कार्यकलाप को संभालते आये हैं।

वर्ष 1994 में यह मंदिर तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के अधीन में आया। उन्होंने इसका जीर्णोद्धार करते हुए वर्ष 2006 में महासंप्रोक्षण का आयोजन किया था। इस अवसर पर किसी दाता ने वल्ली देवसेना समेत सुब्रह्मण्यस्वामी, श्रीदेवी तथा भूदेवी समेत प्रयाग माधवरायस्वामी के पंचलोह (धातु) में बनी मूर्तियों को बनवाया और मंदिर को समर्पित किया।

* * *

13. करियमाणिक्य नगरि - श्री करियमाणिक्य स्वामी

करिया का अर्थ होता है काला। माणिक्य का मतलब होता है - रत्न। यानी काले रत्न की तरह चमकने वाले पेरुमाल (भगवान), यानी करियमाणिक्य पेरुमाल। श्रीराम का वर्ण काला है। कृष्ण भगवान भी काले हैं। श्रीवेंकटेश्वर जी भी काले हैं। इन तीनों में से यह भगवान किसका रूप है ? यादवों के कुलदेवता हैं कृष्ण भगवान। यादव राजाओं द्वारा निर्मित अनेक कृष्णमंदिरों में यह भी एक है। लेकिन, यहाँ की मूर्ति श्रीवेंकटेश्वर जी की रूप रेखाओं से युक्त होने के कारण इन्हें पेरुमाल नाम से बुलाया जाता है। यही कारण है कि इन्हें - श्रीवेंकटेश्वर स्वामी का ही रूप मानते हैं। इसलिये करिय माणिक्य पेरुमाल का अर्थ श्री वेंकटेश्वर स्वामी ही हैं।

यह ज्ञात नहीं है कि किस राजा ने यह मंदिर बनवाया है। कोई शिलालेख उपलब्ध नहीं है। ई.के 1556 के शासन काल में वीरसदा शिवरायलु ने इस भगवान को पेरुमाल के रूप में नामांकित किया था। इसका अर्थ यह निकलता है कि उस समय तक यह मंदिर काफी प्रसिद्ध हो चुका था। कार्वेटि राजाओं द्वारा, उस समय के तिरुत्तनी, नगरी के अलावा अत्तिमंजेरिपेट तालूक के अन्य मंदिरों के साथ - साथ इस मंदिर को भी संभाला था। तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् ने 1993 - 94 के दौरान जब इस प्रांत के मंदिरों को अपने अधीन किया तब उन्होंने इस मंदिर को भी अपना लिया।

श्रीदेवी एवं भूदेवी समेत करियमाणिक्य पेरुमालस्वामी के लिए हर वर्ष कार्तिक पूर्णिमा के दिन पवित्रोत्सव आयोजित किया जाता है।

सत्रवाडा - नगरी से पल्लिपट्टु जानेवाले मार्ग पर 6 कि.मी की दूरी पर स्थित है - सत्रवाडा। यहाँ श्रीदेवी - भूदेवी समेत करिवरदराज स्वामी को आश्वीयुज माह में दो दिनों के लिए पवित्रोत्सव आयोजित किया जाता है।

* * *

14. काणिपाकम् - श्री वरसिद्धि विनायक स्वामी

सत्यवचन के देवता हैं काणिपाकम् के वरसिद्धि विनायक (गणेश) जी। तरिगोंड में जिस प्रकार लोग प्रतिज्ञा करते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी शपथ लेते हैं कि मैं सत्य कह रहा हूँ। यह सर्व स्वीकृत बात है। यहाँ के भगवान स्वयंभू (अपने आप प्रकट होनेवाले) देवता हैं। ये बढते ही रहते हैं। इसके सबूत हैं - इनके जेवर और मुकुट। समय - समय पर इनमें कड़ापन आ जाता है। दुबारा बनवाना पडता है।

तिरुमल - तिरुपति आनेवाले पर्याटक भक्त इस क्षेत्र को देखने में भी रुचि दिखाते हैं। यह पवित्र क्षेत्र, तिरुपति से 75 कि.मी.की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर आने जाने के लिए सरकारी बसें उपलब्ध हैं।

चोल राजाओं के समय से काणिपाकम् के नाम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। 'काणि' का अर्थ होता था 'परिमाण' या 'भूमि'। कहते हैं कि किसी समय इस गांव में तीन भाई थे। इनमें से एक अंधा, दूसरा गूँगा और तीसरा बेहरा था। इनके पास 'काणि' जमीन थी। खेती बाड़ी करके जीवन गुजारते थे। मिट्टी के घड़े से, कुँए से पानी निकालकर खेती की सिंचाई करते थे। लेकिन हर दिन एक घडा फूट जाता था। इस कारण से उन्होंने कुँए को चौडा करने के लिए सोचा। खोदना शुरु किया। एक पत्थर पर सब्बल के लगते ही उससे खून निकलने लगता है। जब गौर से देखा तो वह एक गणेश जी की मूर्ति थी। आश्चर्य की बात है कि उस मूर्ति को पाते ही अंधे की द्दष्टि वापस आ गयी। गूँगा बोलने लगा। बहरा सुनने लगा। उनके खुशी

की कोई सीमा नहीं रही। सभी आश्चर्यचकित हो गये। गणेश जी को उसी जगह पर रखकर, उस कुँए पर एक मंदिर का निर्माण कर दिया।

'काणि' जमीन में मिलने के कारण इस भगवान को वरसिद्धि विनायक जी नाम से जाना गया। आस पास के प्रांतों में इनका काफी नाम हुआ। चूँकि ये दवता स्वयंभू हैं, इनके सामने सिर्फ सत्य ही बोला जाता है। झूठ नहीं बोला जाता। यदि किसी ने इस परम्परा को तोड़ा, तो उनका सर्वनाश निश्चित होता है।

चूँकि इन्हें एक कुँए से पाया गया है - इस कारण से आज भी गणेश जी जमीन के स्तर तक पानी से घिरे हुए दिखाई देते हैं। लेकिन, इस गर्भगृह को छोड़कर, अन्य प्रांत में यह स्थिति नहीं है - वहाँ तो 'बोर' डालकर पानी निकालना पडता है। भगवान जिस पानी में स्थित हैं - उसी को चरणामृत के रूप में भक्तों को दिया जाता है। गर्भगृह के आगे अंतरालम, मुखमण्डप और महामण्डप स्थित हैं। भगवान के सामने मूषिक मंड़प में भगवान का वाहन मूषिक को देखा जा सकता है। मुखमण्डप के प्रवेश द्वार के दोनों ओर गणेश और कुमारस्वामी की मूर्तियाँ हैं। संकीर्ण अंतराल से ही भगवान का दर्शन करना पड़ता है। मूषिक वाहन के बगल में नंदी की मूर्ति भी है।

इस मंदिर के प्राचीर भी बने हुए हैं। तीन मंजिलों का प्रमुख शिखर भी है। इसके सामने ही एक सरोवर है। इसमें स्नान भी कर सकते हैं। यदि नहीं तो, हाथ - पैर धोकर, सिर पर पानी छिडककर, दर्शन के लिए जा सकते हैं। कुछ लोग यहाँ पर सिर के बाल मुँडवाकर मन्नत

पूरा करते हैं । यहाँ पर विवाह भी किए जाते हैं । मंदिर के अंदर एक बडे पेड के नीचे नागप्रतिमाओं के पास संतान की कामना करते हुए कुछ लोग माथा टेकते हैं ।

यहाँ पर दो ध्वजस्तंभ देखे जा सकते हैं । इनमें से एक पत्थर का है । दूसरे पर धातु का कवच चढाया गया है । नए वाहन खरीदनेवाले भक्त यहाँ पर अपने वाहनों की पूजा करवाते हैं और भगवान के कृपा पात्र बनते हैं ।

यहाँ पर चोल राजाओं के समय के दो मंदिर स्थित हैं । उनमें से एक है मणिकंठेश्वर मंदिर । इसे तृतीय कुलोत्तुंगचोल ने सन् 1186 में बनवाया था । दूसरा मंदिर है वरदराज स्वामी का । इसका भी इसी समय के दौरान निर्माण करवाया गया था । मात्र इसी गणेश जी का कोई शिलालेख उपलब्ध नहीं है ।

* * *